ॐ

सन्त - वचनामृत

संग्रहकर्ता:-

स्वामी रामानन्द जी सरस्वती 'राम'

प्रकाशक:-

श्री भगवद्-भक्ति आश्रम, जींद, पंजाब

दानकर्ता:—

श्री योगध्यान जी एम्० ए० जींद निवासी ने एक सहस्र एक सौ पुस्तकें लोक कल्याण की भावना से अपने पूज्य पिता जी स्व० श्री दुलीचन्द जी की पुण्य स्मृति में छपवाई।

संवत्
२०२२

मूल्य
सदुपयोग.

भूमिका

श्री १००८ स्वामी परमानन्द जी महाराज के पार्थिव शरीर के जन्म के सम्बन्ध में केवल इतना ही निश्चित ज्ञात है कि इन योगिराज एवं लीलाविहारी को अवतरित करने का सौभाग्य भी ब्रजभूमि को ही मिला था। एक बार भ्रमण करते हुए आपने रेवाड़ी के श्री राव बहादुर बलबीरसिंह जी को दर्शन दिये। उनके दर्शन मात्र से राव साहब के जीवन में एक महान् परिवर्तन आया और उन्होंने तथा भक्त नन्दकिशोर जी मोरपंखवाला आदि कुछ अन्य सज्जनों ने श्री महाराज जी से वहाँ पर लोकोन्नति के लिये कोई कार्य प्रारम्भ करने की प्रार्थना की। अतएव श्री महाराज जी ने श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी की स्थापना की। इसके कुछ वर्ष पश्चात् श्री महाराज जी ने जींद बीड़ में भी एक आश्रम की स्थापना की। इन आश्रमों के माध्यम से श्री महाराज जी ने अनेक लीलाएँ एवं लोकोपकारी कार्य किये। (उनकी लीलाओं के संग्रह का प्रयत्न चल रहा है। जिन सज्जनों के पास ऐसे अनुभव हों वे कृपया 'श्री ओंकारनाथ अग्रवाल, बड़ा बाजार, शिकोहाबाद' मैनपुरी, को लिख भेजें।) इन चरित्रों द्वारा भक्त जनों को आनन्द देते हुए श्री महाराज जी संवत् १९९२ (सन् १९३६) की श्रावण कृष्णा पंचमी को नगराज हिमालय के शिमला-स्थित जाकू शिखर पर अपने लीला विग्रह को छोड़ कर अपने स्वरूप में समा गए।

श्री महाराज जी अपने भौतिक रूप में हमारे चर्मक्षुओं के सम्मुख अब नहीं हैं, किंतु हमारे मनश्चक्षुओं के सामने उनके प्रिय एवं स्वरचित भजन, उपदेश आदि अब भी वर्तमान हैं। उनमें से ही कुछ को इस संकलन द्वारा जनता के लिये सुलभ कराने का प्रयास किया गया है। हमें विश्वास है कि प्रेमीजन इनके अध्ययन-मनन द्वारा अपने जीवन को सफल बनाने की चेष्टा करेंगे।

—राम

॥ प्रार्थना ॥

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

ओं—सर्व व्यापक सबकी रक्षा करने वाले ;
भूः—सत्य स्वरूप ;
भुवः—चैतन्य स्वरूप, ज्ञान स्वरूप ;
स्वः—सुख स्वरूप ;
तत्—वह अनन्त परमात्मा ;
सवितुः—सबको उत्पन्न करने वाले ;
वरेण्यम्—ग्रहण करने योग्य, तारीफ के लायक ;
भर्गो—सब पापों का भर्जन नाश करने वाले, शुद्ध तेजस्वरूप ;
देवस्य—प्रकाश और आनन्द के देने वाले ऐसे परमात्मा का ;
धीमहि—हम सब ध्यान करते हैं ;
धियः—बुद्धियों को ;
यः—वह परमात्मा ;
नः—हमारी ;
प्रचोदयात्—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में प्रेरणा करे संसार से हटाकर अपने स्वरूप में लगावे और शुद्ध बुद्धि प्रदान करे ।

ओं यत्तेजः सवितुर्देवस्य वरेण्यं तदुपास्महे ।
तत्तेजोऽस्माकं बुद्धीः श्रेयस्करेषु नियोजयेत् ॥

हे तेजःपुञ्ज ज्योतिःस्वरूप परमात्मन् ! ज्ञान और आनन्द के देने वाले ! विजय कराने वाले ! प्रार्थना और स्तुति करने योग्य,

सबको उत्पन्न करने वाले ! सबका संहार करने वाले ! सबकी रक्षा करने वाले ! सबको प्रेरणा करने वाले ! अनन्त अपार आनन्दस्वरूप ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! हम तुम्हारा ध्यान करते हैं। तुम्हारे गुण हममें प्रकट हों और तुमको प्राप्त हों। जो तुम हो सो ही हम हैं और जो हम हैं सो ही तुम हो, ऐसे ऐक्य-भाव से हम तुम्हारा ध्यान करते हैं। तुम हमारी बुद्धियों को पवित्र और धर्मार्थ, काम और मोक्ष में प्रेरणा करो। हममें तेरी सच्ची भक्ति और प्रेम प्रकट होवे। सबको हम अपनी ही आत्मा समझें और हमारे शत्रु नाश को प्राप्त हों। भीतर काम, क्रोध इत्यादि और बाहर हमारी उन्नति में बाधक विघ्नकारक शत्रु सब नष्ट हों जिससे आनन्दपूर्वक हम आपको प्राप्त हों। धन्यवादपूर्वक हमारी आपको अनन्तवार नमस्कार हो। हमारी रक्षा करो। एक मात्र आप ही हमारे रक्षक हो !

॥ ओं शम् ॥

इस मन्त्र को जो श्रद्धा भक्ति पूर्वक जपेगा उसे अवश्यमेव भगवान् के दर्शन होंगे, मोक्ष मिलेगी, कल्याण होगा, सब पापों का नाश होगा, मनोकामना पूर्ण होगी। पुत्र के इच्छुक को पुत्र, धन चाहने वाले को धन, रोगी को नीरोगता, विजय चाहने वाले को विजय प्राप्त होगी, सिद्धि चाहने वाले को सिद्धि, ऋद्धि चाहने वाले को ऋद्धि, विद्या चाहने वाले को विद्या, भक्ति चाहने वाले को भक्ति, प्रेम चाहने वाले को प्रेम, और प्रेम का आश्रय परमात्मा प्राप्त हो जावेगा, इसमें सन्देह नहीं !

गायत्री मन्त्र के जप से पूर्व स्मरण करने योग्य बातें

गायत्री महामन्त्र का जप प्रारम्भ करने से पूर्व निम्नलिखित बातें स्मरण कर लेना चाहिये—

१—ओंकार का ब्रह्मा ऋषि है, गायत्री छन्द है, अग्नि देवता है, शुक्ल वर्ण है, और सर्व कर्मों के आरम्भ में विनियोग है।

२—भूर्भुवः स्वः —इन व्याहृतियों का प्रजापति ऋषि है, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप् छन्द है अग्नि, वायु, आदित्य, देवता है, गायत्री विधि में विनियोग है।

३—गायत्री महामन्त्र का सविता देवता है, विश्वामित्र ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, अग्नि मुख है, जप, प्राणायाम और उपनयन में विनियोग है।

गायत्री का पद्यानुवाद

'ओं' सर्व व्यापक जो सबकी रक्षा करते हैं भगवान्।
'भूः' सर्व को सत्तास्फूर्तिदाता सत्य स्वरूप महान्॥
'भुवः' दुख के नाशक चिन्मय जिनका उत्तम ज्ञान स्वरूप।
'स्वः' सर्व सुखदायक सुखमय परम आत्मा अलख अनूप॥
'तत्' अनन्त हैं! सर्वसार हैं!! जिनका कोई पार नहीं।
'सवितुः' सर्वोत्पादक, रक्षक, प्रेरक, करे संहार नहीं॥
'वरेण्यम्' है वर्णन करने योग्य जगत् में उनका नाम।
'भर्गो' ज्योतिर्मय पापों के भर्जन कर्त्ता पूर्णकाम॥
'देवस्य' देते हैं सबको दिव्य-प्रकाश शक्ति आनन्द।
'धीमहि' ध्याते है हम सब पूर्ण ब्रह्म श्री परमानन्द॥
'धियः' हमारी बुद्धि वृत्तियों को वह दीनबन्धु भगवान्।
यः', जो ऐसी महिमा वाले परमेश्वर हैं दयानिधान॥

'नः' सभी हम जीव मात्र के उर में जिनका वासस्थान।
'प्रचोदयात' वो करे प्रेरणा जिससे हम पायें उत्थान॥
आदि देव को श्रेष्ठ तेज जो उसका हम करते हैं ध्यान।
श्रेय कर्म में सदा हमारी बुद्धि लगावें वह भगवान॥

(रचयिता श्री आनन्द मुनि)

गायत्री और गायत्री का जप

सब मिल जपो मंत्र गायत्री, अपना जो चाहो कल्याण॥ टेक॥
आदि मन्त्र मुनियों ने गाया, जपकर परम तत्व को पाया॥
तीन ताप का होय सफाया, इसको गाते वेद हैं चार॥ १॥
स्तुति ध्यान और होय प्रार्थना, सन्ध्या चार नित्य प्रति करना।
आवागमन का फिर कोई डर ना, जग में रक्खो सबसे प्यार॥ २॥
पंच अवसानों पर कुछ हटना, मन कर शान्त मन्त्र को रटना।
बाकी रक्खो और झंझट ना, अर्थ का मन में करो विचार॥ ३॥
जप प्राणायाम उपनयन में भाई, है विनियोग मुनिवर कहै गाई।
अग्निमुख, सविता देव दर्शाये, ऋषि हैं विश्वामित्र उदार॥ ४॥
जो कहते अधिकार नहीं है, उनका यही विचार नहीं है।
'समानो मन्त्रः' यही वेद कही है, श्रुति का सत्य वचन है सार॥ ५॥
एहि विधि सब मिल जपो, जपाओ, राग द्वेष को दूर भगाओ।
परमानन्द मगन हो जाओ, आप में आप निहार॥ ६॥

(रचयिता श्री सीताराम जी ब्रह्मचारी प्रज्ञाचक्षु)

। भक्त भजनावलि ।

भजन नं० १

श्री १०८ स्वामी परमानन्द जी महाराज के भजन

इस पद में श्री महाराज जी ने साकार निराकर एवं अद्वितीय रूप से ब्रह्म भावना की उपासना का वर्णन किया है, और विभिन्न मतों में परमात्मा के जो विभिन्न नाम मिलते हैं उन सब नामों का आदर करते हुए उनका समन्वय किया है ।

(स्वामी कृष्णानन्द जी सरस्वती)

दोहा—ओ३म् निरंजनं दुःख भजनं ररंकार ओंकार ।
सत्य पुरुष सोऽहं तुही अलखं सर्वाधार ॥

ओ३म् निरंजन ररंकार प्रभु, सोऽहं सत्य नाम करतार ।
अच्युत गुरु गोविन्द दातार, परमानन्द रूप निरधार ।
एक अखण्ड ज्ञान भण्डार, तुम्हरी ज्योति का उजियार ।
मैं, मैं, मैं, पन सर्वाधार, नेति नेति कर वेद उचार ।
राम आत्मा अपरम्पार, शंकर ब्रह्म सर्व का सार ।
ओत प्रोत सब में निरंकार, जीवन प्राण आप ओंकार ।
हरि नारायण अग्नि तार देव देव मैं करहूँ पुकार ।
कृष्णानन्ता ऽचलहं गौड, हूँ फट अल्ला सर्व पसार ।
विनवो तुमको बारम्बार, प्रीतम प्यार करो उद्धार ।
तद्वन गणपति नयन मझार, होवे अनन्त तुम्हें नमस्कार ॥

भजन नं० २

श्री महाराज जी ने समस्त सृष्टि में ओंकार को व्यापक रूप से अनुभव किया था । उसी भाव को इस भजन द्वारा उन्होंने प्रकट किया है । (स्वा० कृष्णानन्द जी सरस्वती)

दोहा--पुरुष प्रकृति ईश मिल अकार उकार मकार।
सर्व वेद का मूल है एक शब्द ओंकार॥

हमारे प्रभु एक तुमही ओंकार ॥ टेक ॥
मात पिता गुरु बन्धु सहोदर, धन विद्या परिवार॥ १ ॥
मन बल बुद्धि प्राण तुमही हो, नयनन में उजियार ॥ २ ॥
हरि होकर हरे रंग में दीसो, पत्र पुष्प फलदार॥ ३ ॥
धरणि आकाश शशि और तारे, बिजली में चमकार ॥ ४ ॥
ऊपर नीचे पर्वत सागर, सब तुम अपरम्पार॥ ५ ॥
तुमही सूरज में हो गरजो, वर्षो अमृत धार ॥ ६ ॥
एक ध्वनि हो तुमसे सबकी, तुमरा वार न पार ॥ ७ ॥
सुन्दर शक्ति विकाश शुद्धता हमको दो दातार ॥ ८ ॥
काम क्रोध मद लोभ निवारो परमानन्द दो प्यार ॥ ९ ॥

भजन नं० ३

जपो रे मन मूल मन्त्र ओंकार ॥ टेक ॥
ओंकार से वेद प्रगट भये, विद्या का भण्डार॥ १ ॥
ओंकार का ध्यान धरो जो, हो जावे भव पार॥ २ ॥
वेद के आदि अन्त और मध्य में ऋषि करें उच्चार॥ ३ ॥
चारों वेद पुराण अठारह, सर्व शास्त्र का सार॥ ४ ॥
निरंकार अज ज्योति स्वरूपा, आप में आप निहार॥ ५ ॥

भजन नं० ४

दोहा--अच्युत अगम अपार अज तद्वन ब्रह्म अनन्त।
परम हंस अव्यक्त शिव सबके आधार अन्त॥

भजो रे मन शुद्ध सच्चिदानन्द ॥ टेक ॥
सकल ब्रह्माण्ड पुकारे जिनको अनन्त अपार अखण्ड ।
पुष्प कुमार गगन में तारे वरणत सूरज चन्द ॥
सभी वस्तु की सुन्दरताई जितलावें गोविन्द ।
ओंकार अज ज्योति स्वरूपा पूरण परमानन्द ॥

भजन नं ५

ब्रह्म का है आनन्द स्वरूप ॥ टेक ॥
निराकार निर्विकार निरंजन ज्योति स्वरूप अरूप ॥ १ ॥
अध ऊरध दायें और बांयें एक अखण्ड अनूप ॥ २ ॥
आनन्द को सब चाहें प्राणी, कहा रंक कहा भूप ॥ ३ ॥
एक हो परमानन्द विराजे, नहिं छाया नहिं धूप ॥ ४ ॥

भजन नं० ६

जय जय सीताराम मुख से बोलो रे ॥ टेक ॥
बड़े भाग्य मानुष तन पावा, सुरदुर्लभ सद् ग्रन्थन गावा ।
राम भजन करो सुकरम बाबा, तज दो खोटे काम, वृथा मत डोलो रे ॥
राम नाम है रतन अमोला, एक रत्ती और बावन तोला ।
सन्त जनों ने खूब टटोला, पूर्ण कर दे काम, हिय बिच तोलो रे ॥
अष्ट प्रकार काम को त्यागो, भगवद्भक्ति में नित लागो ।
सोये बहुत दिन अब तो जागो, कौड़ी लगे ना दाम, तैयार तुम होलो रे ॥
इष्ट धर्म आश्रम का राखो, मुख से झूठ कभी मत भाखो ।
गाँव-गाँव हों आश्रम लाखों, बने देश हरि धाम, पाप को धोलो रे ॥

भजन नं० ७

सन् १९२६ इङ्गलैंड के युवराज भारत आये । सारे देश ने एक

होकर युवराज के स्वागत का बहिष्कार किया। उस समय अंग्रेजी सरकार और ईसाई पादरियों ने मिलकर युवराज के स्वागत के लिये सरकारी रेलों द्वारा लगभग ५० हजार अनपढ़ अछूत भाइयों को दिल्ली में इकट्ठा किया और पुराने किले में उनकी सभा कराई।

ईसाई पादरियों ने इस अवसर से लाभ उठाकर उन अन्त्यज भाइयों को ईसाई बनाना चाहा। श्री महाराज जी को इसका पता चला और उन्होंने यह भजन बनाया और आश्रम की 'अछूत पाठशाला' की भजन मण्डली को तथा मुझे दिल्ली पुराने किले में भेजा। श्री महाराज जी की कृपा से इस भजन का वहाँ ऐसा प्रभाव पड़ा कि सब भाइयों ने ईसाई बनने से इन्कार कर दिया और सभा का कार्य ही आश्रम वालों हाथ सौंप दिया।

(स्वा० कृष्णानन्द जी सरस्वती)

धर्म मत हारो रे ! जग में जिन्दगी दिन चार ॥ टेक ॥

अगम लोक से चल कर आया, पल्ले खर्ची कुछ नहीं लाया।
यहाँ आकर गढ़ कोट चिनाया, यों ही जाता संसार ॥ १ ॥
धर्मराज के जाना होगा, सारा हाल सुनाना होगा।
फिर पीछे पछताना होगा, कर लो सोच विचार ॥ २ ॥
अब तो चेत करो मेरे भाई, तूने वृथा उमर गँवाई।
तैं धोके काया लुटवाई, भज राम नाम है सार ॥ ३ ॥
बार-बार सद्गुरु समझावें, मिनखा जन्म बहुर नहीं पावें।
गया वक्त फिर हाथ न आवे, श्री स्वामि जी कहें हरबार ॥ ४ ॥

भजन नं० ८

तेरा यह खेल अपारा है जित देखूँ तित तू ही तू है ॥ टेक ॥
तू ही बन में, तू ही घर-मन्दिर में, कूप बावड़ी तू ही सरवर में।
तू ही सबका करतार, भरम से न्यारा है ॥ १ ॥
इन्द्रियों में देखा तू ही मन है, शुद्ध करन में तू ही पवन है।
वरुणों में तू ही वरुण, जलों में गंगा धारा है ॥ २ ॥
ज्ञानी में ब्रह्म ज्ञान तू ही है, योगी का मुख ध्यान तू ही है।
सबका जीवन प्राण तू ही आधारा है ॥ ३ ॥
फूल पात फल डार तू ही है, कालों का महाकाल तू ही है।
परमानन्द प्रकाश शब्द ओंकारा है ॥ ४ ॥

भजन नं० ९

दोहा—एक शब्द गुरुदेव का जाका अनन्त विचार।
पण्डित थाके मुनि जना वेद न पावे पार ॥
सुनो भाई साधो अक्षर पद का विचार ॥ टेक ॥
नित्य शुद्ध शिवरूप निरञ्जन निर्विकल्प निश्चय भव भजन।
अजर अमर अज निर्गुण निर्मल निर्विशेष निराधार ॥ १ ॥
विभु अनन्त अद्वैत अविनाशी पुरुषोत्तम स्वतंत्र सुखराशी।
स्वयं प्रकाश असङ्ग अनादि, निष्क्रिय और निराकार ॥ २ ॥
पूर्ण ब्रह्म अनन्त अनूपा, अप्रमेय अव्यक्त अरूपा।
निर्विकार निरवयव सनातन, अगम अखण्ड अपार ॥ ३ ॥

भजन नं १०

म्हारे प्रेम विरह के बाण लगेंगे काहू हरिजन के ॥ टेक ॥
माया बस हो रहा अज्ञानी, जिनके सद्गुरु लगे नहीं कानी।
चुबक चुबक रह जाय हथौड़ी जैसे घन के ॥ १ ॥

धन सम्पत्ति में फिरत भुलाया, गुरु के शब्द नहीं चित लाया।
अन्त समय पछताय नरक में जब लटके ॥ २ ॥
विरही की तो विरही जाने, बेदरदी नहीं पीर पिछाने।
फटा कलेजा जाय, बींध गया सब तनके ॥ ३ ॥
जो दीखे सो रूप हमारा, अलख लखे सोई लखने हारा।
रोम रोम के बीच एक हूआ हरि चमके ॥ ४ ॥
शुद्ध सच्चिदानन्द अमाया, ओंकार अज ध्यान लगाया।
परमानन्द प्रकाश हुआ, गया जम नश के ॥ ५ ॥

भजन नं० ११

हरि नारायण हरि नारायण नारायण हरि ओ३म् ॥ टेक ॥
भव दुख हारन सब सुख कारन पतित उधारण प्रभु ओ३म् ॥ १ ॥
शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूपा, अगम अरूपा शिव ओ३म् ॥ २ ॥
निगम निरूपा सुर नर भूपा, ज्योति स्वरूपा प्रभु ओ३म् ॥ ३ ॥
अनन्त अपारा पार न वारा निरधारा हरि ओ३म् ॥ ४ ॥
ब्रह्म विकास स्वयं प्रकाश, जगन्निवास स्वामी ओ३म् ॥ ५ ॥
राम गोविन्द परमानन्द कृष्ण मुकुन्द गुरु ओ३म् ॥ ६ ॥

भजन नं० १२

यह भजन तथा इसके आगे वाली षट्पदी श्री महाराज जी ने अपने शरीर त्याग से कुछ ही काल पूर्व रचे थे। इनमें दैहिक लीला के संवरण से कुछ काल पूर्व के ब्रह्मलीन सन्त के व्यापक अनुभव तथा प्रकाश की झलक मिलती है। (स्वामी कृष्णानन्द जी सरस्वती)

लहरा रही है ज्योति चिदानन्द की ॥ टेक ॥
सब ब्रह्माण्डों के पृष्ठ भाग पर,
सत्ता स्फूर्ति सबको दे रही है निजानन्द की ॥ १ ॥
सारे विश्व के बाहर भीतर, हृदय कमल में सूर्यमण्डल में।
जगमगा रही है ज्योति महानन्द की ॥ २ ॥
यह संसार असार है अन्तिम, एक ज्योति है अखण्डानन्द की ॥ ३ ॥
सूर्य, चाँद, विद्युत् और तारे, अग्नि ज्योति है भवानन्द की ॥ ४ ॥
ज्योति बिना कुछ और नहीं है, अहं ज्योति है ज्ञान यही है ॥
अहं ब्रह्मास्मि ज्ञान की ज्योति, जग रही है घट २ परमानन्द की ॥ ५ ॥

भजन नं० १३

षट्पदी— ममात्मा परमात्मा विश्वात्मा विश्वस्वरूप।
ब्रह्मात्मा सर्वात्मा सूर्यात्मा ज्योति स्वरूप।
अखण्डात्मा पूर्णात्मा ज्ञानात्मा ज्ञान स्वरूप।
सुखात्मा चिदात्मा सदात्मा सत्यस्वरूप।
भावात्मा भवात्मा शून्यात्मा शून्यस्वरूप।
ज्ञातात्मा ज्ञेयात्मा ध्येयात्मा ध्यानस्वरूप ॥

श्री कबीरदास जी के भजन

भजन नं० १४

दोहा— घूम धाम में दिन गया, सोचत हो गई साँझ।
एक घड़ी हरि ना भजा, जन जननी भई बाँझ ॥
भजन बिन बावरे तैंने हीरा सा जन्म गवाँया।
कभी ना आया सन्त शरण में ना तैं हरिगुण गाया।
वह वह मरा बैल की नाईं, सोय रहा उठ खाया ॥ १ ॥

यह संसार हाट बनिये की सब जग सौदा आया ॥
चातर माल चौगुना कीना, मूरख मूल ठगाया ॥ २ ॥
यह संसार फूल सेमल का सूवा देख लुभाया ।
मारी चोंच रूई निकसाई सूंड़ी धुन पछताया ॥ ३ ॥
यह संसार माया का लोभी ममता महल चिनाया ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो हाथ कछु ना आया ॥ ४ ॥

भजन नं० १५

दोहा—कबीर सोय के क्या करे बैठा रहु अरु जाग ।
जाके संग से बीछर्‌यो वाही के संग लाग ॥

मेरी सुरत सुहागन जाग री ॥ टेक ॥
क्या तू सावे मोह नींद में उठ के भजन बीच लाग री ॥१॥
अनहद शब्द सुनो चित दे के उठत मधुर धुन राग री ॥२॥
चरण शीश धर विनती करिया पावेगी अचल सुहाग री ॥३॥
कहत कबीर सुनो म्हारी सुरता जगत पीठ दे भाग री ॥ ४॥

भजन नं० १६

दोहा—शब्द बराबर धन नहीं जो कोई जाने बोल ।
हीरा तो दामों मिले, शब्द का मोल न तोल ॥

शब्द झड़ लाग्यो हे बरसण लाग्यो रंग ॥टेक॥
जन्म मरण की चिन्ता भागी, समरथ नाम भजन लौ लागी ।
म्हारे सतगुरु दीनी सैन, सत्य घर पायोरी ॥१॥
चढ़ी सुरत पश्चिम दरवाजा, तिरकुटी महल पुरुष एक राजा ।
अनहद को झनकार बजे जहाँ बाजारी ॥२॥
अपने पिय संग जाकर सोई, संशय शोक रहा न कोई ।
कट गये करम क्लेश भरम भय भागारी ॥३॥

शब्द बिहंगम चाल हमारी, कहै कबीर सतगुरु दई तारी।
रिमझिम रिमझिम होय काल वश आय गयोरी ॥४॥

भजन नं० १७

जे तन लग गई सोई जाने दूजा क्या जाने मेरा भाई ॥टेक॥
रस्ता में एक घायल घूमे घाव नहीं रे भाई।
सतगुरु बाण विरह का मारा साल रहा तन माहीं ॥१॥
धन्ना भक्त रैदास नामदेव लग गई मीरां बाई।
बलख बुखारे के ऐसी लग गई, छोड़ गया बादशाही ॥२॥
रंका लग गई बंका लग गई लग गई सेवा नाई।
पीपा नाद भड़ा के लग गई कूद पड़ा जल माहीं ॥३॥
दास कबीरा मन का धीरा जिन ये लगन लगाई।
जिन की चोट निशाने लग गई फतै चाकरी पाई ॥४॥

भजन नं० १८

रहेना नहिं देश बिराना है।

यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है॥
यह संसार काँटे की बाड़ी उलझ पुलझ मर जाना है॥
यह संसार झाड़ और झकड़, आग लगे बल जाना है॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है॥

भजन नं० १९

चलो रे मन ! कोई नहीं अपना ॥ टेक ॥
धौला सा कपड़ा तेरे मुख पर डारा, दे दिया ढकना ॥
सवा गज धोती पौने नौ गज कपड़ा यही तेरी बिछना ॥

चार जनें तैंने लेकर चालें जाय जंगल रखना ॥
चुन २ लकड़ी चिता बनाई, लाय दई लुकना ॥
कहैं कबीर सुनो भई साधो, ये जीवन जैसे सुपना ॥

भजन नं० २०

नाम अमल रस पीजिये म्हारी हेली ! चल सत्गुरु के देश ।
पूर्व से बदला उठा म्हारी हेली, पश्चिम वर्षा आय ॥
अम्बर से वर्षा हुई म्हारी हेली अन्दर मल मल न्हाय ॥१॥
अमृत की वर्षा हुई म्हारी हेली, त्रिवेणी के घाट ॥
सुगरे तो भर भर पीवें म्हारी हेली, तुगरे प्यासे जायं ॥२॥
पाप पुण्य दोनों नहीं म्हारी हेली, निर्गुणियों के देश ॥
एक सौ एक पीढ़ी तिरे म्हारी हेली, जो कोई तारण होय ॥३॥
कहैं कबीर विचार के म्हारी हेली, सत्य लोक ले जाय ॥
बहों के गये बाहुड़े म्हारी हेली, आवागमन नशाय ॥४॥

श्री सन्त तुलसीदास जी के भजन

भजन नं० २१

ऐसी हरि करत दास पर प्रीत ।
निज प्रभुता बिसारि जन के बस, होत सदा यही रीति ॥ टेक ॥
जिन बाँधे सुर असुर नाग नर, प्रबल कर्म की डोरि ॥
सोई अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि, बाँध्यो सकत न छोरि ॥१॥
जाकी माया बश बिरची शिव, नाचत पार न पायो ॥
करतल ताल बजाई ग्वाल जुवतिन, ते ही नाच नचायो ।,२॥
विश्वम्भर श्रीपति त्रिभुवन पति, बेद बिदित यह लीख ॥
बलि सौं कछू न चली प्रभुता बर ह्वै द्विज माँगी भीख ॥३॥

जाको नाम लियो छूटत भव, जनम मरण दुख भार ॥
अम्बरीष हित लागी कृपानिधि सोही जन्म्यो दस बार ॥४॥
जोग विराग ध्यान जप तप करि जेहि खोजत मुनि ज्ञानी ॥
बानर भालु चपल पशु पाँवर नाथ तहाँ रति मानी ॥५॥
लोकपाल जम काल पवन रवि, शशि सब आज्ञाकारी
तुलसीदास प्रभु उग्रसेन के, द्वार बेंत कर धारी ॥६॥

भजन नं० २२

तेरी बन जायेगी राम गुण गाये ते ॥टेक॥
ध्रुव की बनी, प्रह्लाद की बन गई।
गणिका की बन गई सुवाके पढ़ाये ते ॥१॥
सबरी की बन गई मीरा की बन गई।
कुब्जा की बन गई चन्दन चढ़ाये ते ॥२॥
बाली की बनी सुग्रीव की बन गई।
हनुमान की बन गई सिया सुधि लाये ते ॥३॥
सूर की बन गई, कबीर की बन गई।
तुलसी की बन गई, हरि यश गाये ते ॥४॥

भजन नं० २३

ममता तू न गई मेरे मन तें।
पाके केस जन्म के साथा, लाज गई लोकन तें ॥
स्रवन बचन न सुनत काहु के बल गये सब इन्द्रनते ॥
टूटे दसन बचन नहिं आवत, शोभा गई मुखन ते ॥
कफ पित बात कठ पर बैठे, सुनहिं बुलावत कर ते ॥

भाई बन्धु सब परम पियारे, नारि निकारत घर ते ॥
जैसे सनि मण्डल बिच स्याही, छुटै न कोटि जतन तें ॥
तुलसीदास बलि जाऊँ चरन ते, लोभ पराये धन ते ॥

भजन नं० २४

तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुञ्ज हारी ॥टेक॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहीं आरति हर तोसो ॥१॥
ब्रह्म तू हौं जीव हौं तू ठाकुर हौं चेरो।
तात मात गुरु सखा तू सब बिधि हितु मेरो ॥२॥
तोहि मोहिं नातें अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरण शरण पावै ॥३॥

भजन नं० २५

जाके प्रिय न राम वैदेही ।टेक॥
तजिये ताहे कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ॥
तजो पिता प्रह्लाद विभीषण, बन्धु भरत महतारी ॥
बलि गुरु तजो कन्त ब्रज बनितन, भये जग मंगलकारी ॥
नाते नेह राम के मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ॥
अंजन कहा आँख जेही फूटे, बहुतक कहहुँ कहाँ लौं ॥
तुलसी सोई सब भाँति परम हित पूज्य प्राण ते प्यारो ॥
जाते होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो ॥

भक्त सूरदास जी के भजन

भजन नं० २६

बन्दौं श्री हरि पद सुखदाई ॥ टेक ॥
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अँधरे को सब कुछ दरशाई ॥
बहिरो सुने मूक पुनि बोलै, रंक चले सिर छत्र धराई ॥
सूरदास स्वामी करुणामय, बारम्बार नमो तेहिं पाई ॥

भजन नं० २७

हमारे प्रभु अवगुण चित ना धरो।
समदर्शी है नाम तुम्हारो चाहो तो पार करो ॥ टेक ॥
इक नदिया इक नार कहावत मैलो नीर भरो।
जब मिल गयो तब रूप एक भयौ गंगा नाम परो ॥
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो ॥
ऊँच नीच पारस नहीं जाने कंचन करत खरो ॥
अब की बेर मोय नाथ उबारो नहीं प्रण जात टरो।
यह माया भ्रम जाल निवारो सूरदास सगरो ॥

भजन नं० २८

जो अब हरि भूले नाहिं बने ॥ टेक ॥
बिरत बिडारन तुम हो गिरधर सुख में मित्र घने ॥
मैं अधीन हूँ कछु नहीं लायक तुम बिन कौन गिने ॥
सूर श्याम प्रभु विपत बिडारन ब्रज निधि शरण तुम्हें ॥

भजन नं० २९

अपन को आपन ही बिसर्‌यो ॥ टेक ॥
जैसे श्वान काँच मन्दिर में भ्रमि भ्रमि भूकि मर्‌यो ॥
ज्यों केहरि प्रतिबिम्ब देखिके, आपन कूप पर्‌यो ॥

जैसे गज लखि फटिक शिला में, दशनन जाय अर्‌यो ॥
मर्कट मूठ छांड़ नहिं दीनी, घर घर भ्रमत फिर्‌यो ॥
'सूरदास' नलिनी को सूआ कहु कौने पकर्‌यो ॥

भजन नं० ३०

केते दिन, हरि सुमरण बिन खोये ॥ टेक ॥
पर निन्दा रसना के वश हो अपने कर्म बिगोये ॥ १ ॥
तेल लगाय किया तन मर्दन, मल २ वस्तर धोये ॥ २ ॥
तिलक लगाय चले बन स्वामी, विषयन के संग जोये ॥ ३ ॥
देख जला औरों की बढ़ती, गुण में अवगुण टोये ॥ ४ ॥
सूरदास प्रभु अधम गति है उदर भरे परि सोये ॥ ५ ॥

श्री गुरु नानकदेव जी के भजन

भजन नं० ३१

साधो यह तन मिथ्या जानो ॥ टेक ॥
या भीतर जो राम बसत है साचों ताहि पिछानो ।
यह जग है सम्पत सुपने की देख कहा ऐड़ानो ।
संग तिहारे कछु ना चालो ताहि कहा लपटानो ।
स्तुति निन्दा दोऊ परिहरि हरि कीरति उर आनो ।
जन नानक सब ही में पूरण एक पुरुष भगवानों ॥

भजन नं० ३२

ठाकुर तव शरणाई आयो ॥ टेक ॥
उतर गयो मेरे मन का संशय जब ते दर्शन पायो ॥
अन बोलत मेरी बिरथा जानी अपना नाम जपायो ।

भजन नं० ३३

भजन नं० ३४

मिश्रित भजन

भजन नं० ३५

दुख नाठ्ये सुख सहज समायो अनंद अनंद गुण गायो।
बाँह पकड़ कढ़ लीने अपने गृह अन्ध कूपते मायो।
कहै नानक गुरु बन्धन काटे बिछुड़त आन मिलायो।

भजन नं० ३३

मन रे गह्यो न गुरु उपदेश।

कहा भयो जो मूंड मुड़ायो, भगवा कीनों भेष।
साँच छाँड़ि कै झूंठहि लाग्यो, जन्म अकारथ कोया।
कर सरपच उदर निज पोष्यो पशु की नाईं सोया।
राम भजन की गति नहिं जानी माया हाथ बिकाना।
उरझ रह्यो विषयन संग बौरा, नाम रत्न बिसराना।
रह्या अचेत न चेत्यो गोविन्द, बिरथा औध सिरानी।
कहै नानक हरि बिरद पिछानो, भूले सदा पिरानी।

भजन नं० ३४

साधो रचना राम बनाई ॥टेक॥

इक बिनशे इक स्थिर माने, अचरज लख्यों न जाई।
काम क्रोध मोह वश प्रानि हरि मूरति बिसराई।
झूठा तन साँचा कर मान्यो ज्यों सुपना रैनाई॥
जो दीखे सो सकल बिनाशे ज्यो बादर की छाँई
जन नानक जग जानो मिथ्या रहो राम शरणाई॥

मिश्रित भजन

भजन नं० ३५

प्रभु मैं शरणागति तेरी निवारो शीघ्र विपत मेरी ॥टेक॥

अज्ञानी जानत नहीं धर्माधर्म विचार,
जो तोहि भावै धर्म है दूजा सभी असार।
नाथ काटो ममता बेड़ी ॥१॥

तू प्रभु अगम अपार है बेहद अरु बेथाह
निराकार परमात्मा सबसे बेपरवाह,
न जाने क्या मरजी तेरी ॥२॥
निराश्रयों का आसरा निर्धारन आधार,
मेरा तुम बिन कोई नहीं अब मेरे सिरजनहार।
करो भव पार नाव मेरी ॥३॥
जो जो मैं हूं सो-सो तू है तुझसा और न कोय
अहम् आत्मा ब्रह्म हूँ यह ज्ञान समरपूँ तोय
प्रगट हो अब न करो देरी ॥४॥

भजन नं० ३६

राम ज्यों राखे त्यों रहिए।
जो प्रभु करे भलाकर माने मुख से बुरा न कहिए।
अनहोनी होनी प्रभु करदे सब सिर पर सहिये।
कर कृपा निज नाम जपावै सो अन्तर लै गहिए।
महरदास प्रभु आज्ञा माने यह सेवक को चहिये॥

भजन नं० ३७

मैं तो आन फसी चोरन के नगर।
सत्संग बिना जिया तरसे॥ टेक॥
इस सत्संग में बहुत नफा है तुरत मिलावै हरि से॥ १॥
मूरख नर कोई सार न जाने सत्संग में अमृत बरसे॥ २॥
शब्द सा हीरा फेंक हाथ से, मुट्ठी भरी कंकर से॥ ३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो सुरत करो वा घर से। ४॥

भजन ३८

दोहा—मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
मन पर जो असवार है, ते साधु कोई एक॥

जिन्होंने मन मार लिया मैं तो उन सन्तों का हूँ दास॥ टेक॥
आपा मार जगत में बैठे नहीं किसी से काम।
उनमें तो कुछ अन्तर नाहीं सन्त कहो चाहे राम॥
मन मारा तन बस किया सभी भरम भये दूर।
बाहर तो कुछ सूझे नाहीं अन्तर झलकं नूर॥
प्याला पी लिया नाम का जी छोड़ा जगत का मोह।
हमको सतगुरु ऐसे मिल गये सहज मुक्ति गई होय॥
नरसी जी के सतगुरू स्वामी दिया अमीरस प्याय।
एक बूँद सागर में मिल गई कहा करे यमराय॥

भजन ३९

दोहा—जैसे लकड़ी ढाक की ऐसा ही तन देख।
वामें केशू छुप रहा या में पुरुष अलेख॥

बँगला भला बना दरवेश, जामें नारायण परवेश॥ टेक॥
पाँच तत्व की ईंट बनाई तीन गुणों का गारा।
छत्तीसों की छात बना कर चिन गया चिनने हारा॥
इस बँगले के दस दरवाजे बीच पवन का थंबा।
आवत जावत कोऊ न जाने देखा बड़ा अचम्भा॥
इस बँगले में चौपड़ माड़ी खेलें पाँच पचीस।
कोई तो बाजी हार चला है कोई चला जुग जीत॥
इस बँगले में पातर नाचे मनुवा तान लगावे।

सुरत निरत के पहर घूँघरू राग छत्तीसो गावे ॥
कहैं मछन्दर सुन जति गोरख जिन यह बँगला गाया ।
इस बँगले के गाने वाला बहुर जन्म नहीं आया ॥

भजन ४०

तूही एक अनेक भयो है प्रभु जी अपनी इच्छा धार ॥ टेक ॥
तूही सिरजे तूही पाले तूही करे संहार ।
जित देखूँ तित तूही तू है तेरा रूप अपार ॥१॥
तूही राम नारायण तूही, तूही कृष्ण मुरार ।
साधों की रक्षा के कारण युग युग ले अवतार ॥२॥
तूही आदि और मध्य तूही है अन्त तेरा उजियार ।
दानव देव तुम्हीं से प्रगटे तीन लोक विस्तार ॥३॥
जल थल में व्यापक है तूही घट घट बोलनहार ।
तो बिन और कौन है ऐसा जासों करूँ पुकार ॥४॥
तूही चतुर शिरोमणी है प्रभु तूही पतित उधार ।
चरणदास सुखदेव तुही है जीवन प्राण अधार ॥५॥

भजन ४१

दोहा—गुरू को कीजे दण्डवत् कोटि कोटि प्रणाम ।
कीट न जाने भृङ्ग को गुरू करले आप समान ॥

मेरे हो मन माना है गुरू नजर निहाल दयाल ॥ टेक ॥
अधर अकाश अधर वाको बँगला घट घट आप समाना है ।
सबसे परे दूर नहीं नीड़े अद्भुत रूप लखाना है ।
भव सागर से उतरण कारण गुरू शब्द जलयाना है ॥

षट् दर्शन में पड़ो खटपटो बड़ा सोई जिन जाना है।
धीसा सन्त शरण सतगुरू की जिन डारा मान गुमाना है॥

भजन ४२

मैं तेरा स्वामी ! मुझे ना दिल से भूल ॥ टेक ॥
तुही धरणि में तुही गगन में, तुही है सबका मूल ॥१॥
तुही डाल में तुही पात में, तूही रंगीला फूल ॥२॥
सोच समझ जग हमने देखा, अन्त पड़ी मुख धूल ॥३॥
'शाहहुसैन' शरण लई तेरी, मुर्शद खोई भूल ॥४॥

भजन ४३

जगत में हरी सम मित्र न कोई ॥ टेक ॥
भाँति भाँति के देत पदारथ, कृपा नीर से धोई ॥१॥
हरि सुमरण सत्संग जगत में, सार पदारथ दोई ॥२॥
जो नर हरि से करे मित्रता, आप हरी सम होई ॥३॥
भजो 'कन्हैयालाल' हरि को, वृथा जन्म क्यों खोई ॥ ४॥

भजन ४४

रमज गुरू चेले की कोई समझे हमारा गुरू सोय ॥ टेक ॥
अलख अलख हो रही खलक में, अलख झलक नहीं होय ॥
इन आँखा से खलक हटैतो अलख निरख लो कोय ॥१॥
गुरू मारे चेला पिटे रे, कौन छुडावै मोय ।
मैं अपना तन आप डसूँ तो, कौन छुडावै गुरु मोय ॥२॥
अपना पराया सब तजा रे, लगी कौन से लोच ॥
जा सत्गुरू ने मार हमारा, द्वैत भरम दिया खोय ॥३॥

अब तो हे गोबिन्द भेटसी, जा चेला सुख सोय ॥
'शम्भूदास' शरण मत त्यागे, गुरू गोबिन्द नहीं दोय ॥४॥

भजन नं० ४५

गुरू मेरे वैद्य हैं जी, मैं तो रोगी हूँ भारा,
अबके उभारो मेरा सरजनहारा ॥टेक॥
राम नाम की साधो, बूंटी जो बोई।
जिन खाई वाकी वेदन खोई ॥१॥
कलह-कल्पना साधो, सब जग घेरा।
छिन मे लुटेगा तेरा बालू कैसा डेरा ।२।
कर्म बाजीगर साधो, रोप्या जो फन्दा।
कूद गया रे सोई साहिब का बन्दा ॥३॥
प्रेम-भटी का साधो, जिन मद पीया।
संकट जूनी में पैर न दीया ॥४॥
नाथ गुलाब साधो, गुरू पूरे पाये।
तोड़ा भरम गढ़ हर दर्शाये ॥५॥

भजन नं० ४६

साधूजन कोई बिरला जागे, सुख सोवें नगरिया के लोग ॥टेक॥
ब्रह्म आवाज हुई घर भीतर, शख पखावज बाजे।
शब्द विवेकी बिरला साधो, अगम निगम से आगे ॥१॥
खोटा वक्त पहरवा ठाढ़े, जानन देवै आगे।
मान-सरोवर हंसा सोवे, बिनु सतगुरू नहीं जागे ॥२॥
मान-बड़ाई गव ईर्षा, सुगुरा हो सो त्यागे।
बिन त्यागे, हर कबहु न मिलते, भरम-भूत उठलागे।
अम्बर बर्षे धरती भीजे, बिन बर्षे झड़ लागे।
'भानीनाथ' शरण सतगुरू की, ब्रह्म ज्योति में जागे ॥४

भजन नं० ४७

यह भजन श्री महाराज जी के अपने रूप में समाजाने के पश्चात् एक भक्त ने उनकी महिमा का वर्णन करते हुए लिखा था।

उनके सत्संग में जब भी हम जाते थे ॥ टेक ॥
मीठी वाणी से सत्कार करते थे वो,
करुणा दृष्टि से चिन्ताएँ हरते थे वो।
भाग दिल से हमारे सारे गम जाते थे ॥ १ ॥

कैसा प्रद्भुत विलक्षण था उनका कथन,
शान्त हो जाते वहाँ जाके हम सबके मन।
भाग द्विविधा भरम एक दम जाते थे ॥ २ ॥

प्रबल युक्तियाँ थीं मनोहर वचन,
सुनके उपदेश भगवत में लगती लगन।
शब्द सद्गुरु के नस नस में रम जाते थे ॥ ३ ॥

करते हरि कीर्तन खुद कराते हमें,
शब्द द्वारा अलख को लखाते हमें।
घन की नाईं बरस करके थम जाते थे ॥ ४ ॥

परोपकार सम्बन्धी जो होती बात,
उसको स्वीकार करते थे तज पक्षपात,
ऐसी बातों पर फौरन ही जम जाते थे ॥ ५ ॥

करते निन्दा किसी की न स्तुति बड़ी,
शान्त और मग्न रहते थे वो हर घड़ी।
मोहन खण्डन के मार्ग में कम जाते थे ॥ ६ ॥

भजन ४८

तू जो चाहे सो कर डारे तेरी शान है प्रभु।
तुमको कोई न रोकन हारा तू बलवान है प्रभु ॥ टेक ॥
पल में राव रङ्क कर डारे, छिन में रङ्क राव कर तारे।
तुमको नेति नेति कह हारे, वेद पुराण हे प्रभो ॥ १ ॥
कहीं बनाई पर्वतमाला, रेगिस्तान कहीं कर डाला।
कहीं पर नदियाँ कहीं पर नाला, सिन्धु महान् हे प्रभु ॥ २ ॥
तेरी माया अजब निराली, जग में भूल भुलैयाँ डारी।
दुनियाँ विषयों में मतवाली, हुई हैरान हे प्रभु ॥ ३ ॥
अनहोनी होनी तू करदे, खाली को एक दम में भर दे।
हमको प्रभू भक्ति का वर दे, भिक्षा दान हे प्रभु ॥ ४ ॥

भजन ४९

गुरु ने म्हारी दुविधा दुरमति धोई।
एकहि ब्रह्म सकल में देख्यो भेद दृष्टि सब खोई ॥ १ ॥
मैं हूँ सब में सब मेरे में संशय रंच न होई ॥ २ ॥
अचरज महिमा रूप अपारा नाम के धागे में पोई ॥ ३ ॥
जो कुछ कहूँ सो सभी मिलावैं परमानन्द निसोही ॥ ४ ॥

भजन ५०

गुरु जी हमारे पूरण परमानन्द ॥ टेक ॥
समदृष्टि और सीतलताई, जैसे पूरन चन्द ॥ १ ॥
रहनि अगाध न जानी जावै, कहै सुनै कटै फन्द ॥ २ ॥
जहाँ जहाँ जायँ होय मुद मङ्गल, नाशत सब दुख द्वन्द ॥ ३ ॥

जीव उभारन देह धर आये, काटन जम को फन्द ॥ ४ ॥
गुरु गोबिन्द जो दो कर जाने, सूझत नाहिं सठ अन्ध ॥५॥
देह नेह शिष्य कारन दरसे, सद्गुरु आनन्द कन्द ॥६॥
भावानन्द जहाँ दुई नाहीं, भासे तहाँ गुरु परमानन्द ॥७॥

भजन नं० ५१

नाम जपन क्यों छोड़ दिया तैंनें हरि भजन क्यों छोड़ दिया ॥
काम न छोड़ा क्रोध न छोड़ा सत्य बचन क्यों छोड़ दिया ॥१॥
कोड़ी को तो खूब सँभाला नाम रतन क्यों छोड़ दिया ॥२॥
झूठे जग में दिल ललचाके असल बतन क्यों छोड़ दिया ॥३॥
खालिस एक भगवान भरोसे तन मन धन क्यों न छोड़ दिया ॥४॥

भजन नं० ५२

दोहा—जा दिन सत्गुरु भेटिया सो दिन लेखे जान ।
कोटि जन्म विरथा गये बिन सत्गुरु के ज्ञान ॥
जन्म सफल उनका हुआ जिन राम पिछाना
जगत पीठ जिसने दई सोई सन्त सिधाना ॥
काम क्रोध मोह मारिके जीता मैदाना ॥
गगन मण्डल में चल बसे जहाँ मन गलताना ॥
धुनि होत मन मोहनि सुनता बिन काना ॥
बिन नेत्र दर्शन घने जहाँ जग रहे भाना ॥
खोले ब्रह्म द्वार को और आगे को जाना ॥
कामी क्रोधी ना चले दुख को सुख माना ॥
राम लाडले सन्त सुखी विरथा भरा जहाना ॥

गुरू परमानन्द सेइयाँ मिटा आवन जाना ॥
भावानन्द जीवत मुए लिया पद निर्वाणा ॥

भजन नं० ५३

मेरो मन रामहिं राम रटैरे ॥टेक॥
राम नाम जपि लीजै प्यारे, कोटिन पाप कटैरे ॥
जनम २ के खत जु पुराने, नामहिं लेत फटैरे ॥
कनक कटोरे अमृत भरियो, पीवत कौन नटैरे ॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, तन मन ताहि पटैरे ॥

भजन नं० ५४

मनवा राम नाम रस पीजे ॥टेक॥
तज कुसंग सत्संग बैठ नित, हरि चरचा गुण लीजे ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह को, चित से बाहर कीजे ॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रंग में भीजे ॥

भजन नं० ५५

सो म्हारे साधो राम नाम धन खेती ॥टेक॥
मन कर हरिया सुरत बरधिया, ज्ञान ध्यान दोऊ जोती ॥
राम नाम का बीज जो बोया उपजे नव निधि सेती ॥
ध्रुव बोई प्रह्लाद ने बोई उनकी हुई अगेती ॥
काम क्रोध के जो नर वश हैं उनकी पड़त पछेती ॥
चोर न चोरे राव न डाँडे भेज न लगत टके की ॥
इस खेती में बहुत नफा है करियो संतन सेती ॥

मीरा के प्रभु गिरधर नागर आन मिले हित सेती ॥

भजन नं० ५६

हाँ म्हारी हेली ! लागी लगन करो भजन गगन में हैं झुलना
हाँ म्हारी हेली ! इस हरियाले बाग में म्हारी हेली !
बिछ रही निर्गुण सेज, शब्द का गींडवा ॥ १ ॥
हाँ म्हारी हेली ! अचल हिंडोले मड़ रहे, म्हारी हेली !
सत्गुरु सरले झोले देय, मंजिल पै पहुँचावना ॥ २ ॥
हाँ म्हारी हेली ! सन्तो धीरे बैठना, म्हारी हेली !
सन्त करें उपदेश, शब्द मुख बोलना ॥ ३ ॥
हाँ म्हारी हेली ! त्रिवेणी के घाट पै म्हारी हेली !
मीरा मल मल न्हाय, हंस आये पावना ॥ ४ ॥

भजन नं० ५७

हे नाथ हे प्रभु महा महिमा तुम्हारी,
वाणी नहीं कह सुना सकती हमारी।
सौ वर्ष भी यदि सदा तब कीर्त्ति गावें,
तो भी कभी न उसके वह पार जावें ॥१॥
पृथ्वी पहाड़ नद पेड़ समुद्र सारे,
हैं यह समस्त जगदीश दिये तुम्हारे ।
हे ईश आप यदि सूर्य हमें न देते,
तो जीव जन्तु जग में न कदापि जीते ॥२॥
यह जो अनेक फल हैं जग में दिखाते,
खाते नहीं हम कभी जिनको अघाते।

यह पुष्प नेत्र सुखदायक जो खिले हैं,
सो भी सभी तव कृपा-कण से मिले हैं ॥३॥
देते न जो तुम हमें जगदीश आँखें,
पाते इन्हें न करते यदि यत्न लाखें।
हे सर्व-लोक सुख-दायक सौख्य धाम,
हे विश्वनाथ विश्वेश तुम्हें प्रणाम ॥४॥
जो जो छिपाया हम काम बुरे करें हैं,
जाने न और इससे मन में डरें हैं।
सो सो सदा तुम उसी क्षण जान लेते,
तत्काल नाथ हमको तुम दण्ड देते ॥५॥
हे हे दयामय प्रभो कर जोड़ते हैं,
सारी कुचाल अब से हम छोड़ते हैं।
जो भूल चूक परमेश्वर हो हमारी,
कीजे क्षमा शरण में हम हैं तुम्हारी ॥६॥

भजन नं० ५८

भक्ति अपने पद कमल की दीजये प्रभु दीजिये।
चरण सेवक आप अपने कीजिये प्रभु कीजिये ॥
अनगणित यह वस्तुएँ प्रभु आपने की हैं प्रदान।
ज्ञान की शक्ति हमें प्रभु दीजिये हरि दीजिये ॥
अनहित न होवे जन्म भर हमसे किसी का हे प्रभो।
ज्ञान की शक्ति हमें प्रभु दीजिये हरि दीजिये ॥
बुद्धि ऐसी हमको हे प्रभु दीजिये हरि दीजिये ॥
हे स्वामी। चरणों में तुम्हारे कोटि बार प्रणाम है।
दास हमको आप आपना कीजिये हरि कीजिये ॥

भजन नं० ५६

पितु मातु सहायक स्वामि सखा, तुम ही इक नाथ हमारे हो।
जिनके कछु और आधार नहीं, तिनके तुम ही रखवारे हो॥
प्रतिपाल करो सगरे जग को, अतिशय करुणा उर धारे हो।
भूलि हैं हम ही तुम को तुम तो हमरी सुधि नाहिं बिसारे हो॥
उपकारन को कछु अन्त नहीं छिन ही छिन जी विस्तारे हो।
महाराज महा महिमा तुमरी समझे बिरले बुधवारे हो॥
सुख शान्ति निकेतन प्रेमनिधे मन मन्दिर के उजियारे हो।
इन जीवन के तुम जीवन हो इन प्राणन के तुम प्यारे हो॥

भजन नं० ६०

अगम नहिं गुरु बिन सूझ पड़े ॥टेक॥
चार वेद पढ़ी पुराण अठारा नोपट खोज मरे।
ज्ञानी बिना भरम नहीं छूटा झूठा ही बाद करे॥
कहें गुरु शब्द आकाश बाँस पर, श्रुति गगन चढ़े।
तन बिराट जीवन रे तुलसी, सहज ही भव तरे॥

ॐ

दोहा–संग्रह

श्लोक—अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पद दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥ १ ॥
न गुरोः सदृशी माता न गुरोः सदृशः पिता ।
यस्तारयति संघोरं संसाराद्धि सुदुस्तरम् ॥ २ ॥ ॥

दोहा–सब धरती कागज करूँ, लेखनि सब बनराय ।
सात सिंधु की मसि करूँ गुरु गुण लिखा न जाय ॥ १ ॥
भक्ति ज्ञान मोहि दीजिये, गुरु देवन के देव ।
और कछू नहिं चाहिये, निशि दिन तेरी सेव ॥ २ ॥
एक शब्द गुरु देव का, जाका अनन्त विचार ।
पण्डित थाके मुनि जना, वेद न पावे सार ॥ ३ ॥
या दुनिया दो रोज की, मत कर यासे हेत ।
गुरु चरणन से लागियो, जो पूरण सुख देत ॥ ४ ॥
जाके हिरदे गुरु नहीं, शिष शाखा की भूख ।
सो नर ऐसा सूख सी, ज्यों बन दाझा रूख ॥ ५ ॥
गुरु समान दाता नहीं, याचक शिष्य समान ।
तीन लोक की सम्पदा, सो गुरु दीनी दान ॥ ६ ॥
गुरू नाम है ज्ञान का, शिष्य सीख ले सोय ।
बिन पढ़ई मर्याद बिना, गुरु शिष्य नहिं होय ॥ ७ ॥
परमेश्वर और गुरु ये, दोनों एक समान ।

इस विशेष यह गुरु तें
सारे एक फल, संत मिले
मिले अनेक फल, कहैं
सीस साथ में, दीनी
उस का पंथ था, पल में
सब पहिले लगी, तैसी
ल की को गिने, तारे
के है ताम की, जाके
लिहाई देह भर, रहे श
ने गुरु में अधिक, धारे
गुरु भक्ति प्रवीण हूँ, लहै
रस आता सुहृद, इष्ट
सुख सबते अधिक, दा
ने सांझ बिन गुरु लखे, ल
ता गुरु मुख द्वार है
सो सब तो एक है,
से गुरु की भक्ति, कर
न मुनि संसार है, गुरु
ने करे गुरु वचन को,
ता साथ बहुत किया,
ते वे सतलोक को
करे गुरु दीपक दि
सोई पन्थ मध्य एक

सुन्दर कहत विशेष यह गुरू तें पावें ज्ञान ॥ ८ ॥
तीरथ नहाये एक फल, संत मिले फल चार।
सत्गुरु मिले अनेक फल, कहैं कबीर विचार ॥ ९ ॥
भेदी लीना साथ में, दीनी वस्तु लखाय।
कोटि जन्म का पंथ था, पल में पहुँचा जाय ॥ १० ॥
जैसी लव पहिले लगी, तैसी निबहै ओड़।
अपने तन की को गिने, तारे पुरुष करोड़ ॥ ११ ॥
सही टेक है तास की, जाके सतगुरु टेक।
टेक निवाहें देह भर, रहे शब्द मिल एक ॥ १२ ॥
ईश्वर ते गुरु में अधिक, धारे भक्ति सुजान।
बिन गुरु भक्ति प्रवीण हूँ, लहै न आत्म ज्ञान ॥ १३ ॥
मात तात भ्राता सुहृद, इष्ट देव नृप प्राण।
अनाथ सुगुरु सबते अधिक, दान ज्ञान विज्ञान ॥ १४ ॥
वेद उदधि बिन गुरु लखे, लागै लोन समान।
बादर गुरु मुख द्वार है अमृत से अधिकान ॥ १५ ॥
कबीर मन तो एक है, भावे तहाँ लगाय।
भावे गुरु की भक्ति, कर भावे विषय कमाय ॥ १६ ॥
मन मुरीद संसार है, गुरु मुरीद कोई साध।
जो माने गुरु बचन को, ताका मता अगाध ॥ १७ ॥
शिष शाषा बहुतै किया, सत्गुरु किया न भित्त।
चाले थे सतलोक को बीचहिं अटका चित्त ॥ १८ ॥
सहजो गुरु दीपक दियो, नैना भये अनन्त।
आदि अन्त मध्य एक हौं, सूझ परे भगवन्त ॥ १९ ॥

सहजो कारज जगत के, गुरु बिन पूरे नाहिं।
हरि तो गुरु बिन क्यों मिले समझ देख मन माहिं॥ २०॥
अष्टादश और चार पट, पढ़ पढ़ अर्थ कराहि।
भेद न पावे गुरु बिना, सहजो सब भर माहि॥ २१॥
सहजो सत्गुरु के मिले, भये और सूँ और।
काग पलट गति हंस होय, पाई भूली ठौर॥ २२॥
सहजो गुरु ऐसे मिले, सम दृष्टि निर्लोभ।
शिष्य को प्रेम समुद्र में, करदे भोवा भोव॥ २३॥
अठ सठ तीरथ तीरथ गुरु चरण, पर्वी होत अखण्ड।
सहजो ऐसो धामना, सकल अण्ड ब्रह्माण्ड॥ २४॥
गुरु आज्ञा दृढ़ कर गहे, गुरु सत सहजो चाल।
रोम रोम गुरु को रटे, सो शिष होय निहाल॥ २५॥
गुरु आज्ञा माने नहीं, गुरहि लगावे दोष।
गुरु निंदक जग में दुखी, मुये न पावहिं मोष॥ २६॥
ऐसे तो गुरु बहुत हैं, धूत धूत धन लेहिं।
सहजो सत्गुरु जो मिले, भक्ति दान फल देहिं॥ २७॥
सहजो गुरु प्रसन्न हो, मूँद लिये दो नैन।
फिर मोसूँ ऐसे कह्यो, समझ लेउ यह सैन॥ २८॥
चींटी जहाँ न चढ़ सके, सरसों ना ठहराय।
सहजो को वा देश में, सत्गुरु दई बसाय॥ २९॥
जब सत्गुरु कृपा करैं, खोल दिखावे नैन।
जग झूठा दीखन लगे देह परे की सैन॥ ३०॥
प्रेम भाव इक चाहिये, भेष अनेक बनाय।

भावे गृह में वास कर, भावे बन में जाय ॥ ३१ ॥
राता माता नाम का, पीया प्रेम अघाय।
मतवाला दीदार का, माँगै मुक्ति बलाय ॥ ३२ ॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा प्रजा जो रुचे, शीश दिये ले जाय ॥३३॥
कथनी के सूरे घने, थोथे बाँधे तीर।
प्रेम चोट जिनके लगे, तिनके विकल शरीर ॥३४॥
प्रीति बहुत संसार में नाना विधि की सोय।
उत्तम प्रीति सो जानिये, जो सद्गुरु से होय ॥३५॥
ब्रह्म रामते नाम बड़, वरदायक वरदानि।
रामायण शत कोटि में, लिय महेश लिय जानि ॥३६॥
मनुज देह प्रापत भयो, सब प्रापत को मूल।
जामें हरि प्रापत नहीं, सब प्रापत में धूल ॥३७॥
सुमिरन की सुधि यों करो, जैसे दाम कँगाल।
कहे कबीर बिसरै नहीं, पल, पल लेय सँभाल ॥३८॥
भव सागर के तरण का, सीधा यही उपाय।
महादेव के भजन में, चित्त भजन हो जाय ॥३९॥
सोई सुखी संसार में, जो सुमिरे भगवान।
राग द्वेष जाके नहीं, सोई चतुर सुजान ॥४०॥
शिव शिव शिव शिव रटन कर, जो चाहत कल्याण।
जन्म मरण के दुःख का, वैद्य न शंभु समान ॥४१॥
हरि सेवा वर्षों तलक, गुरु सेवा पल चार।
चार वेद पढ़ सो दफै, रामनाम इकबार ॥४॥

अधिकी ऊँचा नाम है, सब करणी का जीव ।
अष्टादश और चारका मथ कर काढ़ा घीव ॥४३॥
दया नम्रता दीनता, क्षमा शील सन्तोष ।
इनको लै सुमिरन करे, निश्चय पावे मोक्ष ॥४४॥
स्वाँसो से सोऽहं भयो, सोऽहं से ओंकार ।
ओंकार से ररा भयो, साधो करो विचार ॥४४॥
दादू सिरजनहार के, केते नाम अनन्त ।
मन आवे सोई लीजिये, साधू सुमिरे सन्त ॥४५॥
एक महूरत मन रहे, नाम निरञ्जन पास ।
दादू तब ही जानिये, सकल करम का नास ॥४६॥
राम नाम के लेत ही, होत पाप का नास ।
ज्यों चिनगारी आग की, पड़े पुराने घास ॥४७॥
स्वासों की कर सुमरनी अजपा का कर जाप ।
ब्रह्म तत्व का ध्यान कर, सोऽहं आपहि आप ॥४८॥
वारि मथे बरु होय घृत, सिकताते बरु तेल ।
बिन हरि भजन न भव तरहिं, यह सिद्धान्त अपेल ॥४९॥
सुन्दर सत्गुरु यों कहे, सकल शिरोमणि नाम ।
ताको निशिदिन सुमरिये, सुख सागर सुख धाम ॥५०॥
आयो प्रभू शरणागति, कृपा सिन्धु दयाल ।
एक अक्षर हरि मन बसे, नानक होत निहाल ॥५१॥
दो बातन को भूल मत, जो चाहत कल्यान ।
नारायण इक मौत को, दूजे श्री भगवान ॥५२॥
तुलसी बिलम न किजिये, भजिये राम सुजान ।
जगत मँजूरी देत है, क्यों राखे भगवान ॥५३॥

कबीर सोई मुख धन्य है, जिहि मुख निकसे राम।
देही किसकी बापुरी, पवित्र हो है ग्राम ॥ ५३ ॥
कलियुग सम नहिं आन युग, जो नर करे विश्वास।
गाई राम गुण गण बिमल, भव तर बिनहिं प्रयास ॥ ५४ ॥
बिन विश्वास भक्ति नहीं, तेहि बिन द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिन सपनेहु, मन न लहै विश्राम ॥ ५५ ॥
जासु नाम भव भेषज, हरण ताप त्रय शूल।
सो कृपाल मोहि तोहिं पर, सदा रहहि अनकूल ॥ ५६ ॥
सहजो भज हरि नाम को, तजो जगत सूँ नेह।
अपना कोई है नहीं, अपनी सगी न देह ॥ ५७ ॥
अजामील धोखे लियो, जाने सब संसार।
बाल्मीकि भये ब्रह्म सम, उल्टो नाम विचार ॥ ५८ ॥
जगत मोह फाँसी अजर, कटे न आन उपाय।
जो नित सत संगत करे, सहज मुक्त हो जाय ॥ ५९ ॥
कामधेनु अरु कल्पतरु, जो सेवत फल होय।
सतसंगति छिन एक में, प्राणी पावै सोय ॥ ६० ॥
सतसंगति निज कल्पतरु, सकल कामना देत।
अमृत रूपी बचन कहि, तिहूँ ताप हरि लेत ॥ ६१ ॥
पृथ्वी बावन होत है, सबही तीरथ आदि।
चरणदास हरि यों कहैं, चरण धरे जब साधि ॥ ६२ ॥
साधु सोय तहाँ सोय रहुँ, भोजन संग ही जेऊँ।
जो वह गावें प्रेम से, मैं हूँ ताली देऊँ ॥ ६३ ॥
चक्रवर्ती को सुख नहीं, नहीं सुख देवेश।
वीतराग मुनि है सुखी, बसै एकान्त हमेश ॥६४॥

राग द्वेष जाके नहीं, सोई चतुर सुजान ।
सोई सुखी संसार में, जो सुमिरे भगवान ॥६५॥
भोजन छादन की नहीं, सोच करें हरिदास ।
विश्व भरन प्रभू करत है, सो किमि करें निरास ॥६६॥
बिनु सतसगं न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गये बिनु राम पद, होई न दृढ अनुराग ॥६७॥
मुक्ति द्वार पालक चतुर, सम सन्तोष विचार ।
चौथी सतसंगत धर्म, महा पूज्य निरधार ॥६८॥
जो वे दया करे तेरे पर, प्रेम पिलावे भंग ।
जाके अमल दरशे हरि, नैना आवे रंग ॥६९॥
सुत दारा अरु लक्ष्मी, पापी के भी होय ।
सन्त समागम हरि कथा, तुलसी दुर्लभ दोय ॥७०॥
कथा कीर्तन कलि विषे, भवसागर की नाव ।
कहे कबीर जग तरन को, नाहीं और उपाय ॥७१॥
कथा कीर्तन सुनन को, जो कोइ करे स्नेह ।
कहे कबीर ता दास की, मुक्ति में नहि सन्देह ॥७२॥
सुरती जो हरि मिलन की, तो करिये सत्संग ।
बिना परिश्रम पाइये, पूरण परमानन्द ॥७३॥
सन्त संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ ।
कहहिं सन्त कवि कोविद, श्रुति पुरान सदग्रंथ ॥७४॥
जात न पुछिये साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥७५॥
रवि को तेज घटे नहिं, जो धन जुड़े घमण्ड ।
साधु वचन पलटे नहीं, पलट जाए ब्रह्मण्ड ॥७६॥
जननि जने तो भक्त जन, कै दाता कै शूर ।
नाहीं तो तू बाँझ रहै, काहे गंवावे नर ॥७७॥

सुन्दर मानुष देह की, महिमा वरणै साध ।
जामें बस के पाइये, पूरण ब्रह्म अगाध ॥७८॥
एक अज्ञानी के हिये, बर्तें मते अनेक ।
अनाथ सुज्ञानी कोटि को, निश्चय निज मत एक ॥७९॥
अज्ञानी आसक्त मति, करे सुबन्धन हेत ।
ज्ञानी के आसक्ति नहिं, तजे न कछु गह लेत ॥ ८० ॥
भ्रमण करत जो पवन ते, सूखो पोपर पात ।
शेष कर्म प्रारब्ध ते, क्रिया करत दरशात ॥ ८१ ॥
एक घड़ी आधी घड़ी, आधी हू में आध ।
तुलसी संगत साधुकी, हरे कोटि अपराध ॥ ८२ ॥
साधू की निन्दा बुरी, मत कोई कीजो भूल ।
दुनियाँ में दुख पाइयें, रहे नरक में झूल ॥ ८३ ॥
छाजन भोजन प्रीति सों, दीजे साधु बुलाय ।
जीवत यश है जगत में, अन्त परम पद पाय ॥ ८४ ॥
जो मोय अरपे प्रीति से, सन्तन मुख होय खाऊँ ।
सन्तन के मैं संग हूँ, अनत कहूँ नहिं जाऊँ ॥ ८५ ॥ ८५ ॥
भव-सागर सो तारिकर, ले जावे बहु जीव ।
साधू केवट राम के, पार मिलावें पीव ॥ ८६ ॥
सन्त मिलन को जाइये, तज माया अभिमान ।
ज्यों ज्यों पग आगे धरे, त्यों त्यों यज्ञ समान ॥ ८७ ॥
दर्शन कीजे साधु को, कै गुरु का कर लेय ।
जहँ तहँ ब्रह्महि देखिये, दुविधा दुर्मति हेय ॥ ८८ ॥
खाली साधू न भेटिये, सुन लीजो सब कोय ।
कहे कबीरा भेट धर, जो तेरे घर होय ॥ ८९ ॥

साधु मिले साहब मिले, अन्तर रही न रेख।
मनसा वाचा कर्मणा साधू साहब एक ॥ ६० ॥
प्रभु चाहे सोई करे, ताकूँ टोके कौन,।
देख देख अचरज रहा, चरणदास गह मौन ॥ ६१ ॥
सब रँग तेरे तैं रँगे, तू ही सब रँग माहिं।
सब रँग तेरे तैं किये, दूजा कोई नाहिं ॥ ६२ ॥
तुलसी या संसार में, सबसे मिलिये धाय।
ना जाने का भेष में, नारायण मिल जाय ॥ ६३ ॥
सब तज कर मोको भजे, मोहो सेती प्रीति।
मैं भी उनके कर बिक्यो, यही जू मेरी रीति ॥ ६४ ॥
मन सों रहु निर्वैरता, मुख सों मीठा बोल।
तनसूँ रक्षा जीव की, चरणदास कह खोल ॥ ६५ ॥
जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन कर्तार,
सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार ॥ ६६ ॥
सब जीवन सुख दीजिये, सबसे मीठा बोल।
आतम पूजा कीजिये, पूजा यही अतोल ॥६७॥
अजगर करे न चाकरी, पक्षी करे न काम।
दास मलूका यों कहें, सब का दाता राम ॥६८॥
यथा लाभ सन्तोष सुख, रघुपति चरन सनेह।
तुलसी जो मन वश रहे, जस कानन तस गेह ॥६९॥
तन कर मन कर वचन कर, देत न काहू दुक्ख।
तुलसी पातक झड़त है, देखत उनको मुक्ख ॥१००॥
जो कुछ आवे सहज में, सोई मीठा जान।
कड़ुवा लागे नीम सा, जामें ऐंचा तान ॥१०१॥

राज दुलारे साधु जन, तीन वस्तु को जाय।
कै मीठा कै मान को, कै माया की चाय ॥१०२॥
परारब्ध पहिले बनी, पीछे बना शरीर।
तुलसी यह आश्चर्य है, मन नहिं बाँधे धीर ॥१०३॥
ऊँचे पानी ना टिके, नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भर पिये, ऊँच पियासा जाय ॥१०४॥
भेद भावना मिट गई, क्लेश भये सब दूर।
जित देखो उतही दिखे, महादेव भरपूर ॥१०५॥
रे मूरख जिनके लिये, खपता है दिन रात।
अन्तकाल ना सुनेंगे, वे तेरी एक बात ॥१०६॥
राग मूल संसार है, रागमिटे मिट जाय।
नाश हुये जिमि तैल के, दीपक ज्योति बिलाय ॥१०७॥
दान दीन को दीजिये, मिटे दरद की पीर।
औषधि ताको दीजिये, जाके रोग शरीर ॥१०८॥
दादू आदर भाव का, मीठा लागे मोठ।
बिन आदर व्यञ्जन बुरा, जैसे बासा ठोठ ॥१०९॥
पाप निवारत हित करत, गुन गिन औगुन ढाँक।
दुख में राखत देत कछु, सत्त मित्रन ये आँक ॥११०॥
बात कहन की रीति में, है अन्तर अधिकाय।
एक बचन ते रिस बढ़े, एक बचन ते जाय ॥१११॥
मधुर बचन ते जात मिट, उत्तम जन अभिमान।
तनक शीत जल ते मिटै, जैसे दूध उफान ॥११२॥
आवत गाली एक है, उलटत होयं अनेक।
कहे कबीर ना उलटिये, वही एक की एक ॥११३॥

ऐसी बानी बोलिये मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय ॥११४॥
बोली तो अनमोल है, जो कोई जाने बोल।
हिया तराजू तोल कर, तब मुख बाहर खोल ॥११५॥
शब्द बराबर धन नहीं, जो कोई जाने बोल।
हीरा तो दामों मिले, शब्द का मोल न तोल ॥११६॥
बहुतन को न विरोधिये, निबल जान बलवान।
मिल भख जायँ पिपीलिका, नागहिं नग के मान ॥११७॥
समय न चूके चतुर नर, कहत कवी जन कूक।
चतुरन के खटके हिये, समय चूक की हूक ॥११८॥
तीनहुं राखै दृष्टि में, तीन न बिगरन देत।
तीन पिछानै विमल मति, सबको बस कर लेत ॥११९॥
जेती लहर समुद्र की तेती मन की दौड़।
सहजो हीरा नीपजे, जो मन आवे ठौर ॥१२०॥
पढ़ना गुनना चातुरी, यह तो बात सहल।
काम दहन मन वश करन, गगन चढ़न मुशकल ॥१२१॥
नाम भजो मन वश करो, यही बात है तन्त।
काहे को पढ़ पच मरो, कोटि ज्ञान के ग्रन्थ ॥१२२॥
तन को योगी सब करें, मन को करे न कोय।
सहजे सब सिध पाइये, जो मन योगी होय ॥१२३॥
मन ही अपना शत्रु है, मन ही अपना मित्त।
संसारी मन शत्रु है, परमारथ मन मित्त ॥१२४॥
दुनियाँ स्वपन समान यह, क्यों भरमा मन देख।
आँख खुले कुछ है नहीं, उपजे ज्योंहि विवेक ॥१२५॥

माँगन मरन समान है, मत माँगो कोई भीख।
माँगन ते मरना भला, यह सद्गुरु की सीख ॥१२६॥
कोटि कर्म लागे रहैं, एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया, जब आया अहंकार ॥१२७॥
आँधी आई प्रेम की, ढई भरम की भीति।
माया टाटी उड़ गई, लगी नाम सों प्रीति ॥१२८॥
जूआ चोरी मुखबरी, ब्याज घूस परनार।
जो चाहे दीदार को, एती वस्तु निवार ॥१२९॥
सम दृष्टि सत्गुरु किया, मेटा भरम विकार।
जहँ देखूँ तहँ एक ही, साहब का दीदार ॥१३०॥
ज्ञानी मूल गँवाइयाँ, आप भये करता।
ताते संसारी भला, जो सदा रहे डरता ॥ १३१ ॥
नीच नीच सब तर गये, सन्त चरन लौ लीन।
जाती के अभिमान से, डूबे बहुत कुलीन ॥ १३२ ॥
वह दिन गये अकार्थी, संगत भई न सन्त।
प्रेम बिना पशु जीवना, भक्ति बिना भगवन्त ॥ १३३ ॥
पानी हुआ तो क्या हुआ, तत्ता शीरा होय।
हरिजन ऐसा चाहिये, जैसे हरि ही होय ॥ १३४ ॥
भक्त हमारे पग धरे, जहाँ धरूँ मैं हाथ।
लारे लाग्यो ही फिरूँ, कबहुँ न छोड़ूँ साथ ॥ १३५ ॥
मोको वश कियो जो चहे, भक्तन की कर सेव।
उनमें होकर मैं मिलूँ, करूँ बहुत ही हेव ॥ १३६ ॥
मेरे जन मोमें रहें, मैं भक्तन के माहिं।
मेरे अरू मम सन्त के, कछु भी अन्तर नाहिं ॥ १३७ ॥

व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुण नाम न रूप।
भक्ति हेतु नाना विधि, करत चरित्र अनूप ॥ १३८ ॥
विद्या धन कुल रूप मद, प्रभुता यौवन नारि।
ये बाधक हरि भक्त के, कहें बुधि वेद विचारि ॥ १३९ ॥
दुर्लभ मानुष जन्म है, देह न बारम्बार।
तरुवर ते पत्ता झड़े, बहुर न लागे डार ॥ १४० ॥
या दुनियाँ में आय के, छाँड़ि देय तू ऐंठ।
लेना होय सो लेय ले, उठी जात है पैंठ ॥ १४१ ॥
नानक नन्हा होय रहो, जैसी नन्हीं दूब।
बड़ी घास जल जायगी, दूब खूब की खूब ॥ १४२ ॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजे, और ठगे दुख होय ॥ १४३ ॥
तुलसी या संसार में, पाँच रत्न हैं सार।
सन्त मिलन अरु हरि भजन दया दान उपकार ॥ १४४ ॥
काम क्रोध मद लोभ की, जब लग मन में खान।
तुलसी पण्डित मूरखा, दोनों एक समान ॥ १४५ ॥
आँख कान मुख मूँदकर, नाम निरंजन लेय।
अन्दर के पट जब खुलें, बाहर के पट देय ॥ १४६ ॥
जो तोकूँ काँटा बुवे, ताहि बोई तू फूल।
तोको फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरशूल ॥ १४७ ॥
तेरे भावै कछु करो, भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठ के, अपनो भवन बुहार ॥ १४८ ॥
जा मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द।
कब मरहूँ कब पायहूँ, पूरण परमानन्द ॥ १४९ ॥

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहाँ पाप।
जहाँ क्रोध तहाँ काल है, जहाँ क्षमा तहाँ आप ॥ १५० ॥
अमृत भरे तन मन वचन, निशि दिन पर उपकार।
परगुण मानत मेरु सम, विरले जन संसार ॥ १५१ ॥
सरस्वती के भण्डार की, बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचे त्यों २ बढ़े, बिन खर्चे घट जात ॥ १५२ ॥
सेवक सोई जानिये, होय विपत्ति में संग।
तन छाया ज्यों धूप में, रहे साथ इक रंग ॥ १५३ ॥
जसवन्त वास सराय का, क्या सोवे भर नैन,
स्वाँस नगारे कूच के, बाजत हैं दिन रैन ॥ १५४ ॥
उठ फरीदा जागरे, जागन की कर चौंप।
ये दम हीरा लाल है, गिन गिन हरि को सौंप ॥ १५५ ॥
सबसे मीठा बोलना, करना पर उपकार।
नारायण या जगत में, यह दो बातें सार ॥ १५६ ॥
रूखी सूखी खाय के, ठण्डा पानी पीव।
देख पराई चोपड़ी, मत ललचावे जीव ॥ १५७ ॥
गोधन गज धन बाजि धन, और रतन धन खान।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान ॥ १५८ ॥
चोट सुहेली सेल की, लागत लेत उसाँस।
चोट सहारे शब्द की, तासु गुरु मैं दास ॥ १५९ ॥
तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजे चहुँ ओर।
वशीकरन यह मन्त्र है, तजदे वचन कठोर ॥ १६० ॥
आयो प्रभु शरणागति, कृपासिन्धु दयाल।
एक अक्षर हरि मन बसे, नानक होत निहाल ॥ १६१ ॥

माया सगी न मन सगा, सगा न यह संसार।
परशुराम या जीव को, सगा सो सिरजनहार ॥ १६२ ॥
तृष्णा चिन्ता दीनता, माया ममता नार।
ये षट डाकिन पुरुष की, पीवत खून निकार ॥ १६३ ॥
शान्ति, दया समता क्षमा, मुदिता विद्या प्रीति।
ये जननी सम पुरुष की, रक्षा करे सुनीति ॥ १६४ ॥
पतित उधारन भय हरण, हरी नाथ के नाथ।
नानक ताहिं पिछानिये, सदा बसत तुम साथ ॥ १६५ ॥
चिन्ता ताकी कीजिये, जो अनहोनी होय।
यह मारग संसार को, नानक थिर नहिं कोय ॥ १६६ ॥
मारग चलते जो गिरे, ताको नाहीं दोष।
कहे कबीर बैठा रहै, ता सिर करड़े कोस ॥ १६७ ॥
यथा अनेकन भेष धरि, नृत्य करे नट कोय।
सोई २ भाव दिखावहि, आपुन होय न सोय ॥ १६८ ॥
रहता है सर्वत्र ही व्यापक एक समान।
पर निज भक्तों के लिये, छोटा है भगवान ॥ १६९ ॥
शंकर सिन्धु अगाध में, नाना दृश्य तरंग।
क्षण भर में होवे उदय, क्षण में होवे भंग ॥ १७० ॥
दर्पण में भासै जिमि, नगर बहुत विस्तार।
शंकर में भासै तिमि अनहोना संसार ॥ १७१ ॥
ओत प्रोत शिव सबन में ज्यों कपड़े में सूत ॥
जो उसको जाने नहीं, सो नर बड़ा कपूत ॥ १७२ ॥
जिमि रज्जू अज्ञान से, भासत काल भुजङ्ग।
जीव हुआ भासै तिमि, आतम देव असङ्ग ॥ १७३ ॥
अजर अमर निश्चल अकल, सकल कल्पना हीन।
निराकार निर्विकार है व्यापक इन्द्रि विहीन ॥ १७४ ॥
मैं मेरी जब से मिटी, हटा मोह का फन्द।
जित देखूँ उतही दिखे, पूरण परमानन्द ॥ १७५ ॥

सदाचार

['सदाचार' नामक छोटी सी पुस्तिका श्री महाराज जी ने अपने समाधिस्थ होने से प्रायः २० दिवस पूर्व लिखवाई थी। इसमें कुछ उपदेश तो श्री महाराज जी के अपने ही हैं, कुछ अन्यान्य महापुरुषों के उपदेश उन्होंने लोक कल्याण की दृष्टि से इसमें सम्मिलित करा दिये हैं, जैसे ६२ से ७२ तक के, ७५ से ८७ तक के तथा ९३ से १०० तक के उपदेश आयुर्वेद के ग्रन्थ 'भाव प्रकाश' से उद्धृत हैं, और १४३ से आगे के कुछ उपदेश 'धम्मपद' से संकलित हैं। इन सभी उपदेशों में कहीं कहीं ऐसे स्थल भी आते हैं जो कुछ शंका उत्पन्न करते हैं या समझ में नहीं आते। यदि श्रीमहाराज जी अपने दृश्यमान रूप में 'सदाचार' छप जाने पर भी हमारे बीच होते तो हम उनसे इन शंकाओं का समाधान कर सकते थे। किंतु ऐसा नहीं है। अतः प्रस्तुत प्रकाशन में कहीं कहीं ऐसे स्थलों पर कुछ विद्वानों से प्राप्त टिप्पणियाँ, या अपनी ही समझके आधार पर कुछ स्पष्टीकरण पृष्ठ तल पर दे दिये गये हैं। यदि वे टिप्पणियाँ पाठकों की बुद्धि के अनुकूल हों तो उन्हें ग्रहण करें।]

१. मनुष्य का पहला कर्त्तव्य है कि सद्गुरु की शरण में जावे और उनकी कृपा सम्पादन करने के लिये शुद्ध चित्त से उनकी सेवा करे।

२. उन सद्गुरु के वचनों पर दृढ़ विश्वास रक्खे।

३. एक ही मत मार्ग का अनुसरण करे।

४. साधु सज्जन का सत्संग करे।

५. निरन्तर सारासार का विचार करता रहे।

६. अहर्निश परमात्मा का ध्यान करके उन पर दृढ़ आस्था रक्खे।

७. एक परमात्मा को ही सर्वोपरि इष्टदेव मानना चाहिये। उसी की पूजा करनी चाहिये। सम्पूर्ण कर्म और जीवन का आधार समझना चाहिये। उसके पवित्र नाम का गुप्त जप करना चाहिये और उस पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिये।

८. ईश्वर जीव और माया, सान्त अनादि हैं, और ब्रह्म अनन्त अनादि है, ऐसा मानना चाहिये।

९. मुक्ति अनन्त और अपार है, त्रिविधि दुःख की अत्यन्त निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति रूप है।

१०. कर्मों के अनुसार उन्नति और अवनति माननी चाहिये।

११. अवतार, मूर्ति-पूजा, तीर्थ, श्राद्ध आदि पुरानी बातों को बुद्धि के अनुकूल हों तो मानना चाहिये।

१२. वेद शास्त्रादि प्रमाण ग्रन्थों की अच्छी बातों को बुद्धि के अनुकूल* मानना चाहिये।

१३. सर्व विद्या और सब्स्त पुस्तकों के पढ़ने में मनुष्य मात्र का अधिकार होना चाहिये।

१४. एक मनुष्य जाति है और जैसा करता है वैसा बनता है। जन्म से कोई अच्छा बुरा नहीं होता। इसमें जाति-पाँति ऊँच-नीच का कोई भेद न होना चाहिये।

१५. अध्यात्म विद्या, गीता, उपनिषद्, कबीर आदि महात्माओं की वाणी का नित्य पाठ करना चाहिये।

---

*वेद अपौरुषेय है। वेदों का यथार्थ भाव तो योगी ही जानता है। साधारण व्यक्ति की मान्यता तो भाष्य पर ही अवलम्बित है, और भाष्य भिन्न भिन्न आचार्यों के भिन्न भिन्न हुए हैं। सम्भवतः इसीलिये, सर्व साधारण की दृष्टि से ही, ऐसा लिखा गया है। (श्री सीताराम जी ब्रह्मचारी प्रज्ञाचक्षु)

१६. आलस्य छोड़कर आजन्म विद्या-अध्ययन करना चाहिये।

१७. सब काम समय पर करने चाहिये।

१८. चार वार सन्ध्या करनी चाहिये।

१९. ईश्वर को और मौत को याद रखना चाहिये।

२०. भगवान् के दर्शन करने के लिये योगाभ्यास करना चाहिये।

२१. देश, नरेश और महेश की भक्ति करनी चाहिये।

२२. सब सन्तों को, उनकी पुस्तकों को, उनके अवतार, पीर पैगम्बरों को और अन्य देशों के मनुष्यों को समान दृष्टि से देखना चाहिये।

२३. सबको अपना आपा समझना चाहिये और परस्पर का भेद झूठा समझना चाहिये।

२४. प्यारा, हितकर, सच्चा और मधुर भाषण करना चाहिये।

२५. अपने घर पर आये हुए अतिथि का यथायोग्य पूजन सत्कार करना चाहिये।

२६. आपत्ति आने पर आनन्द में मग्न रहना चाहिये।

२७. अपने साथ में की हुई दूसरे की बुराई को और दूसरे के साथ में किये हुए अपने गुण को भूल जाना चाहिये।

२८. सम्पूर्ण कर्मों के फलों को परमात्मा के अर्पण करना चाहिये।

२९. प्रारब्ध से पुरुषार्थ को बड़ा समझना चाहिये।

३०. बलवान् की अपेक्षा निर्बलों को विशेष सुभीता देना चाहिये।

३१. मन, वाणी और कर्म से सबको सुख पहुँचाना चाहिये।

३२. गोरक्षा के लिये उत्तम नसल उत्पन्न करके गौवें दुधार बनानी चाहिये और गोचर भूमि छुड़वानी चाहिये।

३३. विषयों के अधीन न होना चाहिये।

३४. अधिक उपाधि नहीं बढ़ानी चाहिये।

३५. अधिक सन्तान न बढ़ानी चाहिए।

३६. जिसे अपने लिये चाहे उसे दूसरे के लिये करना चाहिए।

३७. हरएक काम सबकी भलाई के लिये पवित्र आकांक्षा से करना चाहिये।

३८. दूसरों की बड़ाई सुनकर प्रसन्न होना चाहिये।

३९. पड़ोसी का मान व आदर अपना जैसा करना चाहिये।

४०. खान पान प्रेम और शुद्धताई के साथ मनुष्य मात्र का कर लेना चाहिए।

४१. दो बार हाँडी का और एकबार चूल्हे का पका खाना चाहिये।

४२. मीठा भोजन दूसरे को खिलाकर खाना चाहिए।

४३. मोटा खाना और मोटा पहरना चाहिये, और बहुत भूख लगे तब खाना चाहिये, और बहुत नींद आये तब सोना चाहिये।

४४. सात्विक पदार्थ जो बुद्धि इत्यादि को बढ़ावे, भोजन करना चाहिये।

४५. विवाह स्वयंवर रीति से, जात-पाँत के विचार बिना, लड़का-लड़की के प्रेम होने पर उनकी इच्छानुसार होना चाहिये।

४६. एक पुरुष को एक ही स्त्री के साथ विवाह करना चाहिए। आवश्यकता होने पर दूसरी से भी विवाह सम्बन्ध में जो पुरुष को अधिकार हैं वह स्त्री को भी होने चाहिये।

४७. हर विषय में स्त्री पुरुषों के समानाधिकार होने चाहिये।

४८. स्त्रियों का आदर मान करना चाहिये, उन्हें प्रणाम करना चाहिये, पैर की जूती समझने की जगह शिर का मुकुट समझना चाहिये और इसके स्मरणार्थ "गौरी शंकर सीताराम, राधेश्याम श्यामा श्याम" इस मन्त्र का जप करना चाहिये।

४९. स्त्री को पतिव्रत धर्म और पुरुष को नारीव्रत धर्म पालन करना चाहिये। स्त्री-पुरुषों को ऋतुगामी होकर उत्तम सन्तान पैदा करने का दृढ़ संकल्प होना चाहिये।

५०. अच्छे २ लाभदायक, पूज्य उत्तम वृक्ष लगाने चाहिये। वृक्षों की, पशुओं की, मनुष्यों की, औषधियों की उत्तम नसल बढ़ाकर प्रभूत फल देने वाले बनाने चाहिए।

५१. तालाब, कुआ, मन्दिर, प्याऊ आदि बनवाने चाहिए।

५२. ब्याज थोड़ा लेना चाहिए। देश और धर्म के लाभ को विचारते हुए व्यापार करना चाहिए।

५३. स्त्री*, धन, गृह, वस्त्रादि से दूसरे की बहुत जरूरत को पूरा करना चाहिए।

५४. आवश्यकताएँ जितनी कम हो सकें कम करना चाहिए।

५५. दस-दस और पाँच-पाँच गाँवों के मध्य एक एक आश्रम बनाना चाहिए और वहाँ ही जंगल में लड़के लड़कियों की पाठशाला होनी चाहिए।

---

*मुझे ध्यान आता है कि श्री महाराज जी ने इस उपदेश को लिखाते समय मेरी शंका पर कहा था कि 'कोई अतिथि आता है तो उसे स्त्री से भोजन बनवाकर देते हैं कि नहीं।' (श्री भूमानन्द जी) अतः इस पर कोई शंका नहीं उठनी चाहिये।

५६. पन्द्रह-सोलह, अठारह-बीस वर्ष तक उनके आचार की, ब्रह्मचर्य की पूरी देख भाल के साथ रक्षा करनी चाहिए।

५७. कभी २ नाचना और गाना भी चाहिए।

५८. वृद्ध माँ बाप की और दुःखी पड़ोसी तथा मनुष्य मात्र की सेवा करनी चाहिए।

५९. मुकुटदार टोपी, टोप, पाग इत्यादि सूर्य की किरणों से आँखों की रक्षा करने वाला शिरोपा पहनना चाहिए।

६०. बालकों को खेल के द्वारा शिक्षा देनी चाहिये। उनके दिमाग पर बहुत दबाव या बोझा न डालना चाहिये।

६१. सबको बाँसुरी बजानी चाहिये। सबको हरदम खुश और खुर्रम रहना चाहिये।

६२. बलवान् के साथ लड़ाई नहीं करनी चाहिए।

६३. सिर पर अधिक बोझ न धरना चाहिए।

६४. शरीर पर कभी बुहारी की धूल न पड़ने देना चाहिए।

६५. नखों से पृथ्वी न कुरेदनी चाहिए, न हाथों से तिनका ही तोड़ना चाहिए। दोनों हाथों से सिर न खुजाना चाहिए।

६६. उदय होते, अस्त होते और मध्याह्न सूर्य को न देखना चाहिए। पानी में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ा हो तो उसको न देखे। इन्द्र धनुष को न देखे न दूसरे को दिखाना चाहिए।

६७. मल मूत्रादि वेगों को न रोकना चाहिए।

६८. काम क्रोधादि मन के वेगों को रोकना चाहिए।

६९. इन्द्रियों को न पीड़ित करे न उनका बहुत लाड़ ही करना चाहिए।

७०. पैर पर पैर रखकर न हिलाना चाहिए।

७१. देहरी पर बैठ कर खाना नहीं चाहिए। रात्रि को देव मन्दिर में, अथवा वृक्ष के नीचे अकेले न सोना चाहिए।

७२. दिन में मल-मूत्र उत्तर को मुख करके, रात्रि को दक्षिण, को, दोनों संध्याओं में उत्तर को मुँह करके, और गड़बड़झाला में जिधर को चाहे उधर को मुँह करके मलमूत्र त्यागना चाहिए।

७३. जो कुछ संसार में होता है वह भावी के अधीन है। ऐसी अवस्था में चिन्ता न करनी चाहिये। अडोल चित्त होना, सिर आई को शान्ति से सहना, भगवान् के साथ प्रेम करना, यही जीवन का मुख्यउद्देश्य होना चाहिये।

७४. ईश्वर की उपासना जीवन और प्रकृति की उपासना मरण समझना चाहिये। विद्या जीवन अविद्या मरण, सत्य जीवन झूठ मरण, धर्म जीवन और अधर्म मरण, परोपकार जीवन और स्वार्थ मरण, पुरुषार्थ जीवन और आलस्य मरण, ब्रह्मचर्य्य जीवन और व्यभिचार मरण, मित्रता जीवन और शत्रुता मरण, वीरता जीवन और कायरता मरण, सत्संग जीवन और कुसंग मरण, सन्तोष जीवन और लोभ मरण, अहिंसा जीवन और हिंसा मरण, कृतज्ञता जीवन और कृतघ्नता मरण समझना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य जीवन से प्रेम रखता है और मौत से डरता है। इसलिये जीवन के साधनों में रुचि और मृत्यु के साधनों से घृणा करनी चाहिये।

७५. श्रेष्ठ मनुष्यों के साथ मित्रता करे और संसर्ग भी उन्हीं का करे। नीच मनुष्यों का संग छोड़ देना चाहिये।

७६. देव, राजा, वृद्ध, विद्वान्, अतिथि, इनकी सेवा करे।

७७. याचकों को निराश कर खाली हाथ न जाने दे।

७८. किसी की अवज्ञा न करे। गुरु व पूज्य लोगों के पास सदा नम्रता से बैठे। पाँव पसार कर बठना आदि अयोग्य कार्य न करे।

७९. अपकार करने वाले मनुष्यों के साथ भी सदा उपकार करे। सबको अपने समान जाने और द्वेषी से दूर रहे। कोई मनुष्य हमारा बैरी है अथवा अमुक मनुष्य का मैं बैरी हूँ ऐसा किसी प्रकार प्रकाशित न करे।

८०. किसी स्थान में अपना अपमान हुआ हो और अपने ऊपर स्वामी का स्नेह न हो तो इसको भी प्रकाशित न करे।

८१. पानी में अपना प्रतिबिम्ब न देखे।

८१. नग्न होकर जल में न घुसे। जिसकी गहराई विदित न हो, जिस जल में मच्छादि हिंसक जीव रहते हों, उसमें भी न घुसे।

८३. बोलने के समय थोड़ा, हितकारी, प्रसंग के अनुसार, मीठा वचन बोले।

८४. अधिक रस वाले घी सहित और हितकारी पदार्थों का प्रमाण अनुसार भोजन करे। रात्रि में दही न खावे, बिना नमक के कभी दही न खावें, मूँग की दाल, शहद, घी शर्करा के बिना दही न खावे।

८५. मनुष्यों के अभिप्राय को जान कर, जो मनुष्य जिस प्रकार से प्रसन्न हो उसी प्रकार बर्तें, क्योंकि अन्य मनुष्यों को प्रसन्न करना ही चतुरता है।

८६. जिस प्रकार सहाय बिना मनुष्य सुखी नहीं होता उसी प्रकार सब के ऊपर विश्वास करने वाला अथवा सबके ऊपर सन्देह रखने वाला भी मनुष्य सुखी नहीं होता।

८७. कभी उद्योग करने से खाली नहीं बैठना चाहिये। किसी के

सफलीभूत उद्योग को देख कर उस पर ईर्ष्या न करनी चाहिये। जो पुरुष ऐश्वर्यवान् के ऐश्वर्य को देख कर दुःख मानते हैं वे सदैव दुःखी रहते हैं। विद्वान् को यह विचार करना चाहिये कि अमुक पुरुष को किस प्रकार यह ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है। उसी विधा और उसी उपाय से हम भी धनोपार्जन करके अपना यश प्रकाश करें। किसी के संचित किये हुए धन की इच्छा न करें।

८८. खिड़की आदि वाले हवादार मकान बनाने चाहियें।

८९. सुखियों से मित्रता, दुखियों पर दया, साधुओं से मुदिता और दुर्जनों से उपेक्षा करनी चाहिये।

९०. ग्रह भूत और देवताओं के बहम और पाखण्ड को नहीं मानना चाहिये।

९१. वर्षा में धूप में छत्री धरण करके चले। रात में भय के समय हाथ में लकड़ी लेकर चले। जूते पहने रहे देह की रक्षा करे। आगे को चार हाथ पृथिवी देख कर चले।

९२. जहाँ अग्नि का समूह हो वहाँ न जाय, संदेह-युक्त वाहन पर न चढ़े। उन्मत्त हाथी के पास न जाय।

९३. श्रेष्ठ मनुष्यों की सभा में सन्मुख मुँह करके खाँसी, श्वास, डकार, जँवाही और छींक नहीं लेवे। सभा में बैठ कर कभी नाक नहीं कुरेदे।

९४. उकडू कभी न बैठे, अधिक देर तक घुटने ऊँचे करके नहीं बैठे।

९५. अप्रिय वस्तु को निरन्तर न देखे। हाथों से केशों को नहीं हिलावे।

९६. दो पूज्य मनुष्य अथवा स्त्री-पुरुष खड़े हों तो उनके बीच में होकर नहीं जाय।

९७. शत्रु अथवा वेश्या का अन्न कभी न खाय।

९८. किसी का वृथा प्रतिभू न बने। किसी का वृथा साक्षी न हो।

९९. किसी की धरोहर न रक्खे और जहाँ जूवा हो उस को दूर से छोड़ दे।

१००. स्त्री को अलग* शय्यापर न सुलावे। पुरुषों के स्थान में स्त्री को न रक्खे और छिद्र वाली फटी टूटी शैया पर शयन न करे।

१०१. किसी की निन्दा न करे।

१०२. सब ब्रह्माण्ड को अपना शरीर और उसमें सत्तास्फूर्ति दाता परमात्मा को अपना आत्मा समझे।

१०३. सुख और भलाई परमात्मा की तरफ से दुःख और बुराई अपनी गलती से समझे।

१०४. मर के मैं परमात्मा को ही प्राप्त होऊँगा ऐसा दृढ़ निश्चय रक्खे।

१०५. जहाँ तक हो किसी को बुरा न समझे न कहे।

१०६. जैसा कुछ मिल जाय उसी में संतुष्ट रहे।

१०७. अपने को जो सुन्दर और प्यारी वस्तु रुचे उसको परमात्मा का प्रसाद समझ कर ग्रहण करे।

---

* यहाँ 'अलग' का अर्थ 'अपनी सुरक्षात्मक दृष्टि से दूर' समझना चाहिये (श्री स्वा० शंकरानंद जी)। अन्य अर्थ लगाने पर तो यह उपदेश सदाचार के ही ४९ वें उपदेशों के तथा अन्य उपदेशों के विरुद्ध पड़ेगा जहाँ ब्रह्मचर्य पर बल है।

१०८. सवेरे उठते ही सबका 'ॐ ॐ जय श्रीकृष्ण का' कह कर सत्कार करे।

१०९. गायत्री मंत्र से सूर्य के सामने खड़ा हो करके स्तुति, प्रार्थना और उपासना करे।

११०. उपदेश और अच्छी सलाह जहाँ से मिले आदर के साथ स्वीकार करो।

१११. सिद्धि की दो कुञ्जियाँ हैं, बुद्धि और आशा संयुक्त उद्योग करना।

११२. किसी बात में जल्दी न करो। जब समझ लिया तो दृढ़ संकल्प करो, करने के पूर्व उस काम की हानि लाभ भली भाँति मन में तोल लो फिर उसको करो, परिणाम चाहे जो हो।

११३. किसी काम में हाथ डालने के पहले अपने पुरुषार्थ को तोल लो। बहुत ऊँचे चढ़ जाने से गिर जाने का डर, और बहुत नीचे पड़े रहने से कुचल जाने का भय होता है।

११४. मालिक पर भरोसा करो, पर ऊँट के पाँव बाँध कर रक्खा*।

११५. किसी कठिन काम के करने में हिम्मत हार देना कायरता का लक्षण है। यदि उसे दूसरे कर सकते हैं तो तुम क्यों नहीं कर सकते। परमात्मा पर दृढ़ विश्वास रख कर आदमी असम्भव काम कर सकता है। असम्भव का शब्द केवल मूर्खों के कोष में मिलता है।

११६. स्वतन्त्र और स्वाधीन वही कहा जा सकता है जो

* ईश्वर पर विश्वास अवश्य करो, किन्तु अपने कर्तव्य के प्रति भी जागरूक तथा सावधान बने रहो।

अपने काम के लिये दूसरे का आश्रित नहीं है।

११७. एक से एक मिल कर ग्यारह होते हैं। अच्छे और नीति संयुक्त कामों के लिये मिलने का नाम 'एका' है और नीति-विरुद्ध कामों के लिये मिलने का नाम "गुट्ट" है।

११८. न्याय में कोमलता मिली रहने वह सोना और सुगन्ध हो जाता है।

११९. जो कोई अपनी उन्नति या कीर्ति चाहता है तो उसको इन अवगुणों से बचना चाहिये। अधिक सोना, औंघना, डर, क्रोध, आलस्य और टालमटोल।

१२०. राज भक्ति का भारी दर्जा धर्म शास्त्र और नीति दोनों में है। राजा या बादशाह के द्रोही का लोक परलोक दोनों बिगड़ते हैं।

१२१. घमण्ड या अहंकार मूर्खता का चिह्न है।

१२२. जो दूसरे की निन्दा नहीं करता, जिसको अपनी प्रशंसा नहीं सुहाती दूसरे की प्रशंसा से हर्ष होता है, जो दूसरों को सुख पहुँचाता है, छोटों से कोमलता तथा दया भाव से और आदर सत्कार के साथ बर्तता है तथा खेल में भी किसी के साथ जो चालाकी नहीं करता वह महा पुरुष है।

१२३. मौलाना रूम ने फरमाया है कि मैं कितने ही जन्म भोग चुकाहूँ।

१२४. आधी से ज्यादा दुनियां पुनर्जन्म में विश्वास करती है।

१२५. सज्जनों के पड़ोस में रहो। भली कामनाओं को मन में

बुराओ और बुरी कामनाओं को निकालो। शान्त स्वभाव रहो। जब कोई दोष लगावे तो अपने मन को न बिगाड़ो। सम्पत्ति में फूल न जाओ और विपत्ति में पिचक न जाओ दूसरे का माल बेईमानी से मत लो। जिनसे तुम्हारा जी नहीं मिलता उनसे दूर रहो। किसी को कथनी या करनी से धोखा न दो।

१२६. पक्के धर्मी की बोली मीठी* होती है। क्योंकि जो अच्छे काम की कठिनता को जानता है वह अवश्य सँभल कर बोलेगा।

१२७. आदमी अपना दर्पण आप है। अपनी आँख आप खोलो नहीं तो कष्ट खोलेगा।

१२८. झूठी खबर न उड़ाओ बुरे से मेल न करो। तुम्हारे शत्रु का बिचरा हुवा बैल मिले तो उसके घर पहुँचा दो। परदेशी को न सताओ। जब खेत कटो तो थोड़ा सा बटोही के लिये भी छोड़ दो। अपने पड़ोसी के साथ अत्याचार न करो। मजूर की मजूरी रात भर न रक्खो। बहरे की ठठोली न उड़ाओ। अंधे की राह में ठोकर खाने को ढेला न रक्खो। मुखबिरी न करो। चुगली न खाओ। अपने पड़ोसी को बुरे काम करने से डाटो। किसी को छोटी निगाह से न देखो। लग्न मुहूर्त का विचार मत करो।

१२९. बूढ़ों का खड़े होकर सत्कार और सब प्रकार प्रतिष्ठा करो। धरती को बेच न डालो।

१३०. प्रेम आकर्षण या खैंच शक्ति का नाम है जिससे यह सब रचना ठहरी हुई है और मालिक आप प्रेम स्वरूप हैं। अपने से बड़

*पाठान्तर 'धीमी'।

कर किसी को चाहना प्रेम है। जो अपने से बढ़ कर मालिक को चाहता है उसको तन, मन, धन अपने प्रीतम पर वार देने में क्या शोच विचार होगा।

१३१. तीन बात जितनी बढ़ाओगे बढ़ेंगी-भूख, नींद और डर।

१३२. तीन की महिमा तीन जानते हैं—जबानी की बूढ़े, अरोग्यता की रोगी और धन की निर्धन।

१३३. तीन बातों से बचो सब तुम्हें पसन्द करेंगे। किसी से कुछ न माँगो, किसी को बुरा मत कहो, और किसी के सहमान के बिना बुलाये पुछलग्गू न हो।

१३४. तीन के बिना तीन नहीं रहते—धन बिना वाणिज्य के, विद्या बिना शास्त्रार्थ के और राज्य बिना शासन के।

१३५. बूढ़ों का आदर करना, छोटों को सलाह देना, बुद्धिमानों से सलाह लेना, मूर्खों के साथ न उलझना।

१३६. चार तरह के आदमी होते हैं—मक्खीचूस, कंजूस, उदार और दाता। जो न आप खाय न दूसरे को दे वह मक्खी चूस, आप खाय पर दूसरे को न दे वह कंजूस, आप भी खाय और दूसरों को भी दे वह उदार, और जो आप न खाय परन्तु दूसरों को दे वह दाता कहलाता है। यदि दाता नहीं बन सकते तो उदार तो अवश्य ही होना चाहिये।

१३७. संकट में मित्र की, रण में शूर की, ऋण में साहू की,

टोटे में स्त्री की, और रोग-शोक में नातेदारों की, पहचान होती है।

१३८. खुशी, रंज, रोजी, मौत ये अपने आप आती हैं।

१३९. चार जाकर फिर नहीं आतीं-छूटा हुवा तीर, मुँह से निकली बात, बीती हुई उमर, और टूटा हुआ दिल।

१४०. जो जाके न आय वह बुढ़ापा देखा।
जो जाके न आय वह जवानी देखी॥

१४१. चार चीजें पहले निर्बल दीखती हैं और आगे जोर दिखलाती हैं-शत्रु, आग, रोग और ऋण।

१४२. पाँच के संग से बचना चाहिये-झूठा, मूर्ख, कंजूस, डरपोक और दुष्ट।

१४३. मनुष्य को चाहिये क्रोध को प्रेम से जीते, बुराई को भलाई से, लालची को उदारता से, और झूठे को सत्य से।

१४४. बुढ़ापे तक स्थिर रहने वाली भलाई सुखदाई है, दृढ़ता से पकड़ा हुआ विश्वास सुखप्रद है, ज्ञान का प्राप्त करना आनन्ददायक है और पापों से बचना सुखदाई है।

१४५. जो अनहुई बात को कहता है और जो हुई से इन्कार करता है वे दोनों नरकगामी हैं।

१४६. जिसका मन संयम में है उसी ही में शक्ति, शान्ति, प्रेम और बुद्धि है। उस ही ने सम्पूर्ण जगत् को जीता है जिसमें पूर्ण शान्ति है।

१४७. पण्डित चिन्ता, भय, शोक, मोह, निराशा, और घृणा,

इन सब से दूर रहता है।

१४८. इन्द्रियों का निग्रह करना उत्तम है।

१४९. शरीर का संयम अच्छा है, वाणी का संयम उत्तम है, विचारों का संयम उत्तम है, इसी तरह प्रत्येक बात में संयम उत्तम है। जो सब बातों में संयम कर लेता है वह सब दुःखों से छूट जाता है।

१५०. जो कुछ मिल जावे उसे तुच्छ न समझो। कभी दूसरों से ईर्ष्या मत करो। जो औरों से ईर्ष्या करता है उसे शान्ति नहीं मिलेगी।

१५१. जो अपने को नाम व रूप से भिन्न समझता है वह मिथ्या पदार्थों के लिये शोक नहीं करता और वह निस्सन्देह भिक्षुक है।

१५२. वह भिक्षुक जो करुणा से काम करता है वह बुद्ध सिद्धान्त के मानने में अचल है।

१५३. पाँच[1] को छिन्न भिन्न करदे पाँच[2] को छोड़ दे, पाँच[3] से ऊपर होजाए भिक्षुक! जो इन पाँच बेड़ियों से बच निकला है वह ही पार गया है।

१५४. बिना ज्ञान के ध्यान नहीं और बिना ध्यान के ज्ञान नहीं। वह जिसको ज्ञान व ध्यान दोनों हैं निर्वाण के निकट है।

१५५. जिसका चित्त एकाग्र है, और जिसने संसार के प्रलोभनों को छोड़ दिया है वह शान्त कहलाता है।

१५६. जो इच्छाओं के दास हैं वे कामनाओं के प्रवाह के

१. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद। २. पाँच क्रोध। ३. पाँच प्राण।

साथ इस तरह नीचे चले जाते हैं जिस तरह मकड़ी अपने बनाए हुए जाले के साथ। बुद्धिमान पुरुष अन्त में इसे काट कर संसार से विरक्त हो जाते हैं।

१५७. जो सामने है उसे छोड़ दो[1] जो पीछे है उसे छोड़ दो[2]। और जो मध्य में है उसे भी छोड़ दो[3]।

१५८. जिस तरह वर्षा टूटे हुए छप्पर में घुस जाती है उसी तरह मलीन हृदय में विषय प्रवेश कर जाते हैं।

१५९. जो हमारे जीवन जगत् का दाता है, वही हमारा पिता रक्षक भी है, वह महान् तेजस्वी एवं महान् शासक है।

१६०. वे ही लोग मुक्त हैं जिन्होंने अपनी इच्छाओं को जीत लिया है। बाकी लोग देखने में स्वतन्त्र मालूम होते हैं मगर वास्तव में वह बन्धन से जकड़े हुए हैं।

१६१. फिजूल खर्च करने वाले के पास जैसे धन नहीं ठहरता ठीक इसी तरह मांस खाने वाले के हृदय में दया नहीं रहती।

१६२. जिसे उचित अनुचित का विचार है वही वास्तव में जीवित है, पर जो योग्य-अयोग्य का खयाल नहीं रखता उसकी गिनती मुर्दों में की जायगी।

१६३. किसी को अपने से प्रेम है तो उसको पाप की ओर जरा भी न झुकना चाहिये।

१६४. झूठ और निन्दा के द्वारा जीवन व्यतीत करने से तो फौरन ही मर जाना उत्तम है, क्योंकि इस तरह मर जाने से नेकी का फल मिलता है।

---

१ भविष्य की चिन्ता और २ भूतकाल का शोच छोड़ कर ३ वर्तमान में असंग होकर अपने कर्तव्य का पालन करो।

१६५. जो लोग अपने मित्रों के दोषों को खुल्ले आम चर्चा करते हैं, वे अपने दुश्मनों के दोषों को भला किस तरह छोड़ेंगे।

१६६. संसार में त्यागी पुरुषों से भी बढ़कर संत वह है जो अपनी निन्दा करने वालों की कटु वाणी को सहन कर लेता है।

१६७. काम के समस्त वन को काटो डालो, काम के वन से भय उपस्थित रहता है।

१६८. संसार को छोड़ कर तपस्वी हो जाना कठिन है, संसार को भोगना भी कठिन है, आश्रम का जीवन भी कठिन है, घर दुःख-दाई है, बराबर वालों के साथ रहना भी दुःखप्रद है। दुःख सहित भ्रमणशील भिक्षुक ही सबसे श्रेष्ठ है।

१६९. यदि मनुष्य परदोष-दृष्टि रखता है और स्वयं सदा अपराध करने की वृत्ति रखता है तो उसके विकार बढ़ेंगे और वह मनः विकारों के दमन करने से बहुत दूर है।

१७०. महान् पुरुष जो उपकार करते हैं, उसका बदला नहीं चाहते। भला संसार जल बरसाने वाले बादलों का बदला किस तरह चुका सकता है।

१७१. योग्य पुरुष अपने हाथों से मेहनत करके जो धन जमा करते हैं, वह सब दूसरों के लिये ही होता है।

१७२. हार्दिक उपकार से बढ़कर कोई चीज नहीं।

१७३. जब जीव तुझे जान जाता है, तब उसके लिये कोई बेगाना नहीं रहता। तब उसके लिये सब द्वार खुल जाते हैं। हे प्रभो! मुझे वर दो कि मैं अनेकत्व के बीच में एकत्व के अनुभवानन्द से कभी वंचित न रहूँ।

यह संक्षेप से सब मनुष्यों के लिये सदाचार कहा है। इसको अपने में धारण करो, और अपने चारों ओर बाहर और भीतर परमात्मा का चिन्तन करते हुए यही गीत गाओ।

ममात्मा	परमात्मा	विश्वात्मा	विश्वस्वरूप।
ब्रह्मात्मा	सर्वात्मा	सूर्यात्मा	ज्योतिस्वरूप।
अखण्डात्मा	पूर्णात्मा	ज्ञानात्मा	ज्ञानस्वरूप।
सुखात्मा	चिदात्मा	सदात्मा	सत्यस्वरूप।
भावात्मा	भवात्मा	शून्यात्मा	शून्यस्वरूप।
ज्ञातात्मा	ज्ञेयात्मा	ध्येयात्मा	ध्यानस्वरूप।

ओं शम्, ओं खं ब्रह्म, ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

सद्गुरु का उपदेश

समुद्र* जब स्थिर रहता है तब उसे ब्रह्म कहते हैं, और उसी समुद्र में जब लहर उठती है तब उसी को शक्ति या माया कहते हैं, वही देशकाल निमित्त स्वरूप है। सविशेष सगुण और निर्विशेष निर्गुण उसके दो रूप है। पहले रूप में वह ईश्वर जीव और जगत् है तथा दूसरे रूप में वह अज्ञात और अज्ञेय है। सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता एवं अनन्त दया उसी जगत्-जननी जगदम्बा प्रेमस्वरूपिणी भगवती के गुण हैं। प्रत्येक व्यक्ति के पीछे अनन्त शक्ति विद्यमान है। एक कण-बिन्दु कृष्ण, बुद्ध, क्रीष्ट आदि और जगत् का विस्तार एक बिन्दु को प्रकाशित करता है। एक आत्मा ब्रह्म भिन्न भिन्न सर्व उपाधियों में प्रकाशित होता है।

*ब्रह्म और जगत् की एकता दिखाने के लिये यहाँ उनकी उपमा क्रमशः समुद्र तथा उसकी लहरों से दी है।

बड़प्पन की डींग, दलबन्दी और ईर्ष्यादि सदा के लिये छोड़ दो। पृथ्वी की भाँति सहिष्णु हो जाओ। लड़कपन की चंचलता और युवापन की गम्भीरता दोनों मिलाकर सबके साथ प्रेम से रहो। आत्मा के स्वरूप का व्यक्त और कभी अव्यक्त भाव होता है। आत्मा मानो बादलों से ढके सूर्य की न्याईं है। हृदय को समुद्र के समान महान् बना डालो, क्षुद्र भावों को पार कर जाओ, अमङ्गल के आने पर भी आनन्द में उन्मत्त हो जाओ।

संसार को एक चित्र की भाँति देखो, जगत् में कोई तुमको विचलित नहीं कर सकेगा। अहंता को दूर कर दृढ़ता से खड़े हो जाओ। काम, काञ्चन, मान और यश को छोड़कर ईश्वर को दृढ़ता से पकड़ो।

विधि-निषेध के घेरे में पड़े रहने से आत्मा का प्रसार नहीं होता। जो जितनी आत्मानुभूति का प्रकाश कर सकता है उसके उतने ही विधि-निषेध कम हो जाते हैं। दूसरों की सेवा शुभ कार्य है। इसी के प्रभाव से चित्त शुद्ध होता है इसी के प्रभाव से सबके भीतर बैठे भगवान् प्रकाशित होते हैं। आदेश के अनुसार संगठन करने का उद्योग करना, धर्म का यही लक्ष्य है, यही उद्देश्य है। आदर्श धार्मिक क्षमा, धृति, शौच, शान्ति उपासना और ध्यान में परायण आदर्श का अवलम्बन विस्तार ही जीवन और संकीर्णता ही मृत्यु है। जहाँ प्रेम वहीं विस्तार, जहाँ स्वार्थता वहीं संकोच। अतएव प्रेम ही जीवन का एक आधार है। अवश्य अहैतुक प्रेम करना चाहिये, वही एकमात्र जीवन-गति का नियमन करने वाला है।

जिस कर्म से जीवों के मन में धीरे-धीरे ब्रह्म भाव के उदय होने में सहायता पहुँचे वही कर्म उत्तम है। यदि किसी को सुभीता देना हो तो बलवान की अपेक्षा निर्बल को अधिक सुभीता दो। सदा दाता बनो, अपना सर्वस्व दे डालो पर बदले में कुछ न चाहो। दूसरों से प्रेम करो, सहायता करो, सेवा करो, तुमसे जो कुछ बने दूसरे के लिए करो, पर सावधान! बदले में कुछ न चाहो। व्यक्तिगत, देशगत, कालगत, कर्माकर्म का विचार कर साधन करो, सार यही है।

"परोपकाराय सतां हि जीवनम्"

वेदान्त सिद्धान्त

(श्री स्वामी परमानन्द जी महाराज का उपदेश)

जो कुछ यह नाना रूप प्रतीत हो रहा है यह वस्तुतः एक है। वास्तव में एक ही परमार्थ सत्ता असली हस्ती है जिसको ब्रह्म वा परमात्मा कहते हैं। वह शुद्ध चैतन्य व शुद्ध ज्ञान है, अर्थात् वह जानने वाला नहीं किन्तु स्वयं ज्ञान है। वह निर्गुण है, वह आप ही है। जो कुछ है उसमें, और कुछ नहीं। इसीलिये वह निर्गुण व निर्विशेष है। पर यदि वह सत हस्ति एक है और कुछ नहीं तब यह सारा प्रपंच कहाँ से आ गया जिसको हम अपनी चारों ओर देखते हैं, और जिसमें हम अपनी स्वयं एक अलग सत्ता रखते हैं? तो उत्तर यह है कि ब्रह्म के साथ अनादि से एक शक्ति है जिसको माया व अविद्या कहते हैं। यह सारा प्रपंच उसी से दिखलाया जाता है। यह शक्ति न सत् कहलाती है, क्योंकि सत केवल ब्रह्म है, न असत, क्योंकि किसी न किसी भाँति इस प्रपंच को प्रकट कर देती है। वस्तुतः

यह इस भ्रान्ति का अनिर्वचनीय कारण है जिससे हम अपने चारों ओर जड़-चैतन्य की विविध सृष्टि देख रहे हैं। ब्रह्म इस शक्ति के द्वारा इस प्रकार जड़-चैतन्य की अनेक सृष्टि को दिखला देता है जैसे कोई मायावी इन्द्रजालिक अपनी माया शक्ति से अनेक प्रकार की जड़ चेतन वस्तु प्रकट कर दिखला देता है जो वस्तुतः भ्रान्ति मात्र होते हैं। शक्ति रूप से जहाँ तक माया का सम्बन्ध ब्रह्म के साथ होता है वहाँ तक हम ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण कह सकते हैं अर्थात् स्वरूप से निमित्त और माया स्वरूप से उपादान। पर माया ब्रह्म की ही अनिर्वचनीय शक्ति है, उससे भिन्न पदार्थ नहीं है। माया शबल ब्रह्म ही जगत् का अभिन्न निमित्तोपादन कारण है। माया के सम्बन्ध में प्रायः ब्रह्म को ईश्वर कहते हैं। माया ईश्वर के अधीन होकर क्रमशः इन भिन्न-भिन्न रूपों में परिणत हुई है जिनका समुदाय यह जगत् है और जो अपने प्रति नियत नाम और रूप से निखेरे जाते हैं। भूत, भौतिक शरीर और इन्द्रियें ये सब उसी का परिणाम हैं। ये सारे शरीर जो एक दूसरे से भिन्न-भिन्न हैं इन सब में एक ही अभिन्न ब्रह्म है जो माया कृत ज्ञान और कर्म के भेद से प्रति व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है। वही जीव है। जीव का परमार्थ रूप ब्रह्म है और वह एक अद्वितीय ब्रह्म है तथा प्रति शरीर ज्ञान और कर्म की भिन्न-भिन्न शक्तियों से एक जीव दूसरे से भिन्न किया जाता है। ये शक्तियाँ माया का कार्य हैं इसीलिये मिथ्या हैं। यह जगत् इन्हीं भिन्न-भिन्न जीवों से भरा हुआ है। पर न यह जीव और न उसकी उपयोगी वस्तुएँ परमार्थ सत् हैं। क्योंकि यह दोनों माया से सम्बन्ध रखते हैं, माया से दिखलाये जाते हैं, सो इसीलिये

मिथ्या हैं। इसी प्रकार यह सारा भेद मिथ्या है, वस्तुतः नहीं है और प्रतीत होता है। इसी मिथ्या दृष्टि ने अपना परमार्थ स्वरूप भुलाया हुआ है।

अब यह भूला हुआ आत्मा माया से परे व माया के भी असली स्वरूप को नहीं जानता है, इसका अपना परमार्थ स्वरूप इस माया के परदे से ढका है। यह अपने आप को ब्रह्म समझने की जगह उन उपाधियों शरीर इन्द्रियों को अपना आप समझ रहा है जो माया का कार्य है। इस प्रकार यह शरीर इन्द्रियों मन को ही अपना असली स्वरूप जानकर इनकी सारी अवस्थाओं को अपनी अवस्था मानता हुआ कहता है कि 'मैं मोटा हूँ', 'मैं दुबला हूँ', 'मैं अन्धा हूँ', 'मैं बहरा हूँ', 'मैं शोक में हूँ', 'मैं चिन्ता में हूँ', 'मेरा जन्म अमुक सम्वत में हुआ', 'अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ', 'मैं रोगी हूँ', 'मैं मर जाऊँगा', इत्यादि। सो यह आत्मा परमार्थतः शुद्ध ज्ञानस्वरूप है न कि जानने वाला; और अनन्त है। इस अध्यास के कारण यह एक सीमा-हद- में आ जाता है, अल्पज्ञ और अल्प शक्ति हो जाता है और कर्ता और भोक्ता बन जाता है। अपने कर्मों द्वारा पुण्य और पाप का सञ्चय करता है और ईश्वर की मर्यादा में उनके शुभ अशुभ फल भोगता है। जब तक यह रचना स्थिर रहती है यह भी बार बार जन्म ग्रहण करता है कर्म करता है और फल भोगता है। कल्प के अन्त में ईश्वर इस सारे प्रपंच का संहार कर लेते हैं अर्थात् यह सारा माया का कार्य अव्यक्त माया के रूप में वापिस आ जाता है। तब ये सारे जीव करने भोगने से रहित हो जाते हैं मानों उतने काल के लिये गहरी नींद सो जाते हैं। पर उनके कर्मों की

वासना अब भी नष्ट नहीं होती अतएव फिर नये शरीरों को धारण करते हैं। जबकि ईश्वर फिर नये सिरे से सृष्टि को रचते हैं और इसी तरह वह आगे नये कल्पों में शरीरों को धारण करते चले जायेंगे जैसे कि वह अनादि काल से पहले कल्पों में धारण करते चले आये हैं। इसी का नाम संसार है। यह संसार तब तक बना रहता है जब तक अज्ञान है। जब ज्ञान से अज्ञान का नाश हो जाता है तब यह संसार निवृत्त हो जाता है, पर यह उस एक के लिये निवृत्त हुआ भी दूसरों के लिये बना रहता है जो अभी अज्ञान की अवस्था में हैं। यह मार्ग जिससे ज्ञान का उदय होता है वेद में बतलाया है। वेद में दो मार्ग बतलाये हैं—एक कर्म का और दूसरा ज्ञान का। कर्म चाहे कैसा ही ऊँचे से ऊँचा क्यों न हो, वह मनुष्य को संसार से पार नहीं ले जा सकता। उसका बड़े से बड़ा फल भी संसार के अन्तर्गत ही होता है। दूसरा मार्ग ज्ञान काण्ड का है। इसके दो भेद हैं। एक वह भाग जिसमें ब्रह्म का ज्ञान वहाँ तक दिया है जहाँ तक उसका सम्बन्ध जगत् से है। इन भागों में ब्रह्म के भिन्न भिन्न गुण वर्णन किये हैं, अर्थात् इनमें सगुण ब्रह्म ईश्वर हिरण्य गर्भ का उपदेश है और उपासना के लिये है। इसी को उपासना काण्ड कहते हैं। दूसरा वह मार्ग है जिसमें ब्रह्म का शुद्ध स्वरूप सारे गुणों से रहित निर्गुण वर्णन किया है वा जिसमें जीवात्मा को ब्रह्म रूप बतलाया है। इनमें से पहले ज्ञान सगुण ब्रह्म की उपासना से जीवात्मा मुक्ति नहीं पाता है किन्तु वह शरीर को छोड़कर केवल ब्रह्म लोक में जाता है जहाँ वह एक अलग जीव के तौर पर बना रहता है यद्यपि उसकी शक्ति और ज्ञान बहुत बढ़ जाते

हैं। अन्ततः वह निर्गुण ज्ञान को लाभ करता है। और दूसरे वह ज्ञानी जो ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप को जानते हैं, जो सारे गुणों से परे हैं और महावाक्यों तत्वमस्यादि द्वारा जान लेते हैं कि आत्मा के परमार्थ स्वरूप और परमात्मा में कोई भेद नहीं है, वे उसी क्षण परम मुक्ति लाभ करते हैं अर्थात् माया के प्रभाव से परे हो जाते हैं, और अपने असली स्वरूप को पा लेते हैं जो केवल शुद्ध ब्रह्म है। यह अद्वैत सिद्धान्त है जिसके विचार से जीव कृतकृत्य हो जाता है, और उसके ज्ञान में ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं रहता है यही मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य है इसी के लिये परमात्मा ने मनुष्य शरीर दिया है।

जीव के पाँच भ्रम और उनका निवारण

१—"जीवात्मा परमेश्वराद्भिन्नः"

जीवात्मा परमेश्वर से भिन्न है।

२—एकात्मनि प्रतीयमानं कर्तृत्वादि वास्तव्यम्"

आत्मा में प्रतीत होता हुआ कर्तृत्वादि वास्तविक सिद्धान्त ही है।

३—"शरीरत्रयाविच्छिन्नात्मा सङ्गी"

तीनों शरीरों से अविच्छिन्न युक्त हुआ आत्मा संग वाला है।

४—"जगत्-कारणत्वेन ब्रह्मणो विकारित्वम्"

जगत् का कारण होने से ब्रह्म के भाव विकार हैं।

५—"कारणाद्भिन्नस्य प्रपञ्चस्य सत्यत्वम्"

कारण से भिन्न हुआ प्रपंच जगत् को भी सत्यपना है। ऐसे जीव के पाँच भ्रम हैं।

निम्नांकित पाँच दृष्टान्तों से उपर्युक्त पाँच भ्रम निवारण किये जाते हैं।

"बिम्ब-प्रतिबिम्ब दृष्टान्तेन भेद-भ्रमो निवर्तनीयः"

बिम्ब-प्रतिबिम्ब के दृष्टान्त करके भेद-भ्रम निवर्त करना चाहिये। जैसे सूर्य के बिम्ब से जल में गिरा हुआ प्रतिबिम्ब भिन्न नहीं हैं ऐसे भेद का भ्रम दूर करना।

"स्फटिक-लोहित-दृष्टान्तेन पारमार्थिक-कर्तृत्व भ्रमो निवर्तनीयः"

मणि में अर्थात् काँच में जैसे दूसरी वस्तु का लाल रङ्ग दीखता है इस दृष्टान्त करके आत्मा का कर्तापन भ्रम दूर करना।

"सूर्याग्न्युत्पादकाऽदर्श दृष्टान्तेन विकारित्व-भ्रमो निवर्तनीयः"

जैसे सूर्य से अग्नि को उत्पन्न करने वाला शीशा चकमक इन दोनों के योग से अग्नि उत्पन्न करता है वहाँ सूर्य कारण है सो विकार रहित है। विकारवान् शीशा ही है। ऐसे माया ही विकार वाली है। इस दृष्टान्त करके विकारित्व भ्रम दूर करना।

"घटाकाश दृष्टान्तेन संगीति भ्रमो निवर्तनीयः"

जैसे घट के आकाश में महाकाश बँधा नहीं है। उस घटाकाश दृष्टान्त करके संगी संगपने का भ्रम, दूर करना।

"स्वर्ण कटक लोहखड्गादि दृष्टान्तेन कारणाद्भिन्नत्वेन प्रतीयमान-प्रपंचस्य सत्यत्व भ्रमो निवर्तनीयः"

स्वर्ण के कुण्डल और लोहे की तलवार जैसे स्वर्ण तथा लोहे से भिन्न सत्य नहीं हैं प्रत्युत सना तथा लोहा रूप ही हैं। इस दृष्टान्त करके कारण से भिन्नपना करके प्रतीत होते हुए जगत् के सत्यत्व का भ्रम निवर्त करना ॥इति॥

॥ सत्संग सभा शिमला की प्रार्थना ॥

परम पिता पूरण प्रभो, परमानन्द अपार।
प्रेम रूप पावन परम, ईश्वर सर्वाधार॥
दीन दयालु दयानिधे, दाता परम उदार।
सब देवन के देव हे, दुख दोषन से पार॥
शक्ति ज्ञान आनन्द के, हे पूरण भण्डार।
सबसे सुन्दर हे हरे, सब सारों के सार॥
हाथ जोड़ हो वन्दना, तुमको बारम्बार।
भक्ति भाव से नम्र हों, मन में श्रद्धा धार॥
तेरी ऐसी हो दया, हममें बढ़े मिलाप।
संघ शक्ति का मान हो, मिटे फूट का पाप॥
मीठी माला मेल की, फेरें हम दिन रात।
जो जीवन से एक हों, तजें कलह की बात॥
हममें में आवे एकता, भ्रातृपन का भाव।
दिन दिन बल शक्ति बढ़े, धरम करम में चाव॥

आश्रम के उद्देश्य

१—श्री भगवान् की भक्ति का प्रचार करना।

२—गो-रक्षा और उसके लिये गोचर भूमि छुड़वाना।

३—जंगलों में वृक्ष लगवाना और उसके बीच में जलाशय बनवाना।

४—शिक्षा का प्रचार करना, जिसमें मनुष्यमात्र विद्या लाभ कर सकें, और प्राचीन प्रथा को फिर प्रचलित करना।

५—बीमारियों के अवसर पर दवाई बाँटना।

६—आस पास के ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटाकर शान्ति और प्रेम बढ़ाना।

७—सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जागृत करना।

८—राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

गोपाल प्रेस, सिकोहाबाद।